क्या महाराज जयचन्द्र ने मोहम्मद गोरी को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया था ?

["कन्नौज का इतिहास" का २२ वाँ अध्याय]

आनन्द स्वरूप मिश्र

1992

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
लखनऊ

हिन्दी समिति ग्रन्थमाला सं० : २६८

कन्नौज का इतिहास

तथा

महाराज जयचन्द्र की सत्य कहानी

लेखक

आनन्द स्वरूप मिश्र

अवकाश प्राप्त उप सचिव, उत्तर प्रदेश शासन

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

(हिन्दी समिति प्रभाग)

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, हिन्दी भवन,

महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ

प्रकाशक
विनोद चन्द्र पाण्डेय
निदेशक
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
लखनऊ

प्रथम संस्करण : १९९०
द्वितीय संस्करण : १९९२
प्रतियाँ : २१००
मूल्य १७५.०० रुपये
मुद्रक : गोपाल आफसेट प्रिन्टर्स
लखनऊ-६

दो शब्द

'कन्नौज' या 'कान्यकुब्ज' शब्द के साथ ही भारतीय इतिहास के महान् योद्धा, परम धार्मिक, उदार एवं सर्वस्वदानी, स्वयं साहित्य, स्वयं साहित्यस्त्रष्टा एवं बाण, मयूरादि जैसे महान् साहित्यकारों के सम्पोषक, कला-मर्मज्ञ, कुशल शासक एवं विशाल साम्राज्य के संस्थापक सम्राट् हर्षवर्धन का सहसा स्मरण हो आता है। उन्हीं के शासन काल में कन्नौज को चरमोत्कर्ष प्राप्त हुआ, जिसे भारतीय इतिहास कभी विस्मृत नहीं कर सकता।

सम्राट् हर्ष से पूर्व भी मौखरिवंश का यह राज्य केन्द्र था और उनके बाद भी यहाँ गुर्जर-प्रतिहार, राष्ट्रकूट एवं गाहरवाल वंश के शासकों ने इसे गौरव प्रदान किया। यहाँ की समृद्धि विदेशी आक्रान्ताओं की आँखों की कांटा थी, इसीलिए मोहम्मद गौरी ने महाराज जयचन्द्र पर आक्रमण कर इस महान् शासन-केन्द्र को भूमिसात् ही कर दिया। परस्पर विभक्त भारतीय राजा कभी सम्मिलित होकर इन आक्रमणकारियों का सामना न कर सके, फलतः भारत के प्रायः सभी राज्य क्रमशः पराजित होते गए। 'कन्नौज' की तो, उसके पश्चात्, जैसे राज्यश्री सदा के लिए ही विदा हो गई।

'कन्नौज का इतिहास' कन्नौज के उस वैभवपूर्ण अतीत का, विभिन्न स्त्रोतों से दोहन कर, गरिमामय चित्र प्रस्तुत करता है। भारतीय इतिहास के आदिकाल से लेकर उसके उत्कर्ष काल तक और उसके बाद भी आज तक 'कन्नौज' का सम्पूर्ण इतिहास इसमें प्रस्तुत किया गया है। पौराणिक स्त्रोतों से प्राप्त सामग्री भी महत्व की है, विचारणीय है।

'कन्नौज' आज भले ही एक अति सामान्य-सा नगर हो परन्तु प्राचीन काल में राज्य-केन्द्र होने के अतिरिक्त यह देश का महान् सांस्कृतिक केन्द्र भी रहा है। कान्यकुब्ज प्रदेश के आचार, व्यवहार, विद्वत्ता, संस्कृति, की अपनी विशेषताएँ हैं। इसके अवशेषों में आज भी उत्कृष्ट कला विद्यमान है। यहाँ रचित साहित्य विश्व-साहित्य की श्रेणी का है। इसका अवदान अतुलनीय है, अतः इसका इतिहास सभी के लिए पठनीय है।

कन्नौज के इतिहास की एक विशेषता और है। इस भूमि में जितने वीर योद्धा और निर्माता हुए हैं, उतनी ही जहाँ– तहाँ ऐसी छाप मिलती है कि यहाँ के व्यक्तियों ने शत्रुओं को आमंत्रित किया या परस्पर चुगलखोरी की। 'जयचंद' और 'माहिल' इन नामों में ही कुछ ऐसे प्रतीक सिमट गये हैं। लेखक ने स्वयं इन प्रश्नों को सावधानीपूर्वक उठाया है और जहाँ आवश्यकता अनुभव हुई है, साक्ष्य देकर इन प्रवादों का खंडन भी किया है। जहाँ ये तथ्य हैं भी, वे हमें सीख देने के लिए हैं क्योंकि सृष्टि स्वयं भिन्न प्रकृतियों से बनी है और इस प्रकार के लोग कहाँ नहीं होते ?

जो हो, इतिहासकार की कन्नौज और उसके गौरव के प्रति गहरी आत्मीयता है। इसी ने उसे सामग्री–संकलन एवं इतिहास–लेखन के लिए प्रेरित किया है। इस ग्रंथ में अनुसंधाताओं के लिए भारत के एक महान् सांस्कृतिक–राजनीतिक केन्द्र के सम्बन्ध में पर्याप्त तथ्य उपलब्ध होंगे, ऐसा विश्वास है।

इस इतिहास–ग्रंथ की लोकप्रियता इसी बात से सिद्ध है कि केवल कुछ ही दिनों में इसका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया। अब ग्रंथ का द्वितीय संस्करण आपकी सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है।

डॉ० शरण बिहारी गोस्वामी
कार्यकारी उपाध्यक्ष

अध्याय-२२

यह आरोप असत्य कि जयचन्द्र ने मोहम्मद गोरी को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया

सार-पत्रक

१. सम्प्रति अध्याय का आधारभूत सिद्धान्त।
२. पृथ्वीराज पर मोहम्मद गोरी के दूसरे आक्रमण का वास्तविक कारण जिससे जयचन्द्र का कोई सम्बन्ध न था।
३. कथित आरोप का आधार—महाराज की रखेली रानी सुहावा-देवी का षड्यंत्र।
४. जयचन्द्र की निर्दोषिता के प्रमाण में विद्वानों के मत।
५. समकालीन ग्रन्थों में इस आरोप का जिक्र नहीं।
६. कुछ लेखकों के विपरीत मत पर टिप्पणी।
७. कन्नौज के पूर्व शासकों, जयचन्द्र के पूर्वजों तथा स्वयं जयचन्द्र ने मुसलमान आक्रमणकारियों से युद्ध किए थे।
८. जयचन्द्र ने पृथ्वीराज की (गोरी से निपटने के लिए) सैनिक सहायता नहीं की, इसका समुचित कारण था।
९. निमंत्रण तभी सार्थक माना जा सकता था जबकि उसके साथ सैनिक सहायता का आश्वासन होता और साथ ही युद्ध संचालन के लिए प्रचुर अग्रिम धन भेजा जाता।
१०. पृथ्वीराज द्वारा पराजित गोरी को कुछ ही समय बाद निमंत्रण भेजने की बात तर्क-संगत नहीं।
११. संयोगिता स्वयंवर की कथा कल्पित, अतः जयचन्द्र और पृथ्वीराज में वैमनस्य का ऐतिहासिक प्रमाण नहीं।
१२. कन्नौज की सेना इतनी वृहत् तथा शक्तिशाली थी कि जयचन्द्र बिना किसी की सहायता के पृथ्वीराज को पराजित कर सकते थे।
१३. क्या जयचन्द्र इतने विचारहीन थे कि स्वयं अपने ही सर्वनाश की योजना बनाते ?

१४. क्या महाराज मंत्रियों के परमर्श की उपेक्षा कर सकते थे।

१५. यदि मोहम्मद गोरी और जयचन्द्र में मैत्री होती (जैसा कि कथित आरोप में निहित है) तो बाद में गोरी जयचन्द्र पर आक्रमण न करता।

१६. पृथ्वीराज के शौर्य के समर्थन ही में कुछ लेखकों ने निमंत्रण की कथा का आविष्कार किया।

१७. आरोप सम्बन्धी बातों का निष्कर्ष।

१. सम्प्रति अध्याय का आधारभूत सिद्धान्त

इस विज्ञान प्रधान युग में सभी विषयों के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रभुत्व है। अतः महाराज जयचन्द्र के कथित देशद्रोह के सम्बन्ध में इसी पद्धति के अनुसार विचार करना लाजमी होगा। किन्तु विचार करने के पहले इस पद्धति का स्पष्टीकरण उचित होगा।

वैज्ञानिक शोध पद्धति के अनुसार विचारणीय विषय के हर पहलू पर निरीक्षण करना आवश्यक है। इस निरीक्षण में पद-पद पर शंका तथा तर्क का प्राधान्य होता है। वैज्ञानिक की दृष्टि में उस तथ्य को श्रेय नहीं माना जा सकता जो ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्रत्यक्ष न किया जा सके। किसी व्यक्ति विशेष अथवा ग्रंथ के कथन के आधार पर ही वह किसी समस्या पर विश्वास नहीं कर सकता जब तक कि वह स्वयं अपनी विधि से उसे भली-भाँति परख नहीं लेता। सत्य के अन्वेषण में वैज्ञानिक अपने या अन्य किसी के मत को अपने विश्लेषण में बाधक नहीं होने देता। या यों कहिए कि वह अपने को तटस्थ रखता है। ऐसी स्थिति में वैज्ञानिक पद्धति को बुद्धि का मार्ग कहा जा सकता है।

वैज्ञानिक की दृष्टि में कोई भी पूर्व निर्धारित तथ्य सदैव के लिए मान्य नहीं होता। समय-समय पर उसका परीक्षण आवश्यक है क्योंकि नई परिस्थितियों में उसमें बदलाव होना सम्भव है। अतः कोई मान्यता-प्राप्त निष्कर्ष तभी तक सत्य माना जाता है जब तक परिस्थितियों से उसका खंडन नहीं होता। इस दृष्टिकोण से कोई तथ्य अन्तिम सत्य नहीं कहा जा सकता।

इस पूर्व कथन के बाद प्रश्नगत आरोप का खंडन तथा महाराज जयचन्द्र की निर्दोषिता का विवेचन सार-पत्रक में अंकित उपकरणों के अन्तर्गत किया जाएगा।

२. पृथ्वीराज पर मोहम्मद गोरी के द्वितीय आक्रमण का वास्तविक कारण जिससे जयचन्द का कोई सम्बन्ध न था

अपनी गिरी हुई प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करना ही एकांकी कारण था जिसने मोहम्मद गोरी को पृथ्वीराज पर दूसरा आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया था।

सन् ११९१ के हमले में सुल्तान की भीषण पराजय हुई थी और वह मरते-मरते बचा था। युद्ध में घायल होकर वह अपने घोड़े से गिर पड़ा था और राजपूत सिपाहियों द्वारा उसका वध होने को ही था कि उसका एक अंगरक्षक, अपने जीवन को जोखिम में डाल कर, उसे युद्ध भूमि से उठा ले गया। इस प्रकार वह मौत के मुंह से निकाला गया।

यद्यपि सुल्तान को पुनर्जीवन मिला तथापि उसका हृदय ग्लानि से परिपूरित हो गया। उसने यही समझा इस प्रकार कायरतायुक्त जीवन-लाभ से तो युद्ध भूमि में मर जाना ही श्रेयकर होता। स्वदेश लौटने पर वह स्वस्थ तो हो गया किन्तु वह सदैव चिन्तित ही दिखाई पड़ता था। एक विशिष्ट व्यक्ति द्वारा इसका कारण पूछने पर उसने कहा था कि पृथ्वीराज से युद्ध में उसकी शर्मनाक पराजय ही उसकी चिन्ता का कारण थी। फिर युद्ध करके तथा विजय प्राप्त करके अपनी प्रतिष्ठा को पुनः जीवित करना ही अब उसका परम ध्येय हो गया। इसी की तैयारी में वह निरन्तर लगा रहता था। शीघ्र ही उसने एक अधिक शक्तिशाली तथा विशाल सेना का संगठन कर लिया और दूसरे साल ही सन् ११९२-९३ में उसने पृथ्वीराज पर दुबारा आक्रमण किया।

गोरी के दूसरे आक्रमण का कारण गेन्से महोदय निम्न शब्दों में लिखते हैं—

"Muhammad of Ghor was not the man to submit to defeet (at the hands of Prithviraj) in quiet despair. In his own words :

'Since the day of defeat, despite external appearances, I have never slumbered in ease, or wakened but in sorrow.'

"He, therefore, made ready to retrieve his losses, recover his honour, or die in the attempt.

"As soon as his wounds were healed, he set to work to organize a new military expedition, and in 1193 Muhammadans and Hindus once more faced each other on the historic battlefield of India, the plains of Panipat, in the neighbourhood of Tarain."[1]

इसी विषय पर विस्तृत वर्णन फरिश्ता ने अपनी पुस्तक 'तारीख-ए-फिरिश्ता' में किया है जिसे ब्रिग्स महोदय ने अंग्रेजी में अनूदित किया है। उसी से निम्न

---

१. J. H. Gense, *History of India* (1954), p. 102.

उद्धरण यहाँ दिये जा रहे हैं ।[1]

"Mahomed Ghoory was in person in the centre of his army, and, being informed that both wings were defeated, was advised to provide for his own safety. Enraged at this counsel, he cut down the messenger, and rushing on towards the enemy with a few followers, committed terrible slaughter. The eyes of Chamund Ray[2] falling on him, he drove his elephant directly against Mahomed Ghoory who, pesceiving his intention, charged and delivered his lance full into the Raja's mouth, by which many of his teeth were knocked out. In the meantime the Raja of Dehly (Chamund Ray) pierced the king through the right arm, with an arrow. He had almost fallen, when some of his chiefs advanced to his resscue. This effort to save him gave on opportunity to one of his faithful servants to leap up behind Mahomed Ghoory who, faint from loss of blood, had nearly fallen from his horse, but was carried triumphantly off the field though almost wholly deserted by his army, which was pursued by the enemy for nearly forty miles. After this defeat, when he had recovered from his wounds at Lahore, he appointed governors to the different provinces he possessed in India, and returned in person to Ghoor. At Ghoor, he disgraced all those officers who had deserted him in the battle, and compelled them to walk round the city with their horse's mouth-bags, filled with barely, hung about their necks· at the same time forcing them to eat the grain like brutes...."

........Mahomed remained for a few months with his

---

१. John Briggs, *Rise of the Mahomedan Power in India* (*Tarikh-i-Firishta*), Vol. I, pp. 170 et seq..

२. Chamund Rai was Prithviraj's brother and was governor of the Delhi province under Prithviraj who had his headquarters at Ajmer, his ancestral kingdom.

brother at Ghoor, who still retained the title of king, and then returning to Ghizny, spent the ensuing year in pleasure and festivity. At length, having recruited an army, consisting of 1,20,000 chosen horse, composed of Toorks, Tajeeks, and Afghans, many of whom had their helmets ornamented, with jewels, and their armour inlaid with silver and gold, he marched from Ghizny towards India, without disclosing his intentions.

"When he had advanced as far as Pishawur, an old sage of Ghoor, prostrating himself before him, said, 'O, King, we trust in thy conduct and wisdom, but as yet thy design has been a subject of much speculation among us.' Mahomed Ghoory replied :

'Know, old man, that since the time of defeat in Hindoostan, notwithstanding external appearances, I have never slumbered in ease, or wakened, but in sorrow and anxiety. I have, therefore, determined, with this army, to recover my lost honour from those idolaters, or die in the attempt.'

The sage, kissing the ground. said;—'Victory and triumph be thy attendants, and fortune be the guide of the paths. But, O, King, let the petition of thy slave find favour in thy ears, and let those chiefs you have so justly disgraced be permitted to take the same opportunity of wiping away the stain on their character.'

"The prince listened to his request, and sent an order to Ghizny to release the disgraced officers from confinement, commanding such of them as were desirous of recovering their character to attend him. They all accordingly joined the camp, and each received a robe of honour, according to his rank. The nex day, the royal standard was put in motion and the army advanced to Mooltan, where Mahomed conferred titles and offices on all who had been firm to his interests. Ho then proceeded to Lahore, from whence he despatched

Kowam-ool-Moolk Humzvy, one of his principal chiefs, ambassador to Ajmeer, with a declaration of war, should the Indians refuse to embrace the true faith.

"Pithow Ray sent a haughty answer, and immediately wrote for succour to all the neighbouring princes. Nor did his allies refuse their aid, so that he was soon enabled to meet Mahomed Ghoory with an army consisting (according to the most authentic record) of 300,000 horse, besides above 3,000 elephants, and a body of infantry. The Hindoos waited to receive the Mahomedans on the former field of battle. The two armies encamped in sight of each other, with the river Soorsutty between them.

"The Rajpoot princes, to the number of 150, had assembled in this vast camp having sworn, by the water of the Ganges, that they would conquer their enemies, or die martyrs to their faith.

"They then wrote a letter to Mahomed in these terms—'To the bravery of our soldiers we know you are no stranger; and to our great superiority in number, which daily increases, your eyes bear testimony. If you are wearied of your own existence, yet have pity upon your troops, who may still think it a happiness to live. It were better that you should repent in time of the rash resolution you have taken, and we shall permit you to retreat in safety in the morning, and not crush the army which your ambition has led to ruin.'

"Mahomed returned them this politic answer—'I have marched into India at the command of my brother, whose general only I am. Both honour and duty bind me to exert myself to the utmost in his service; I canno retreat, therefore, without orders; but I shall be glad to obtain a truce till he is informed of the situation of affairs, and till I have received his answer.'

"This letter produced the intended effect; for the enemy conceiving that Mahomed was intimidated, spent the night in riot and reverly, while he was preparing to surprise them. He accordingly crossed the river a little before the dawn of the morning, drew up his army on the sands, and had entered part of the Indian camp before the alarm was spread. Notwithstanding the confusion which naturally ensued on this occasion, the Hindoo line was of such extent that they had sufficient time to draw out their cavalry, which served to check the approach of the Mahomedans, until they themselves were able to advance, which they did with great resolution and some order, in four lines."

"Mahomed Ghoory, on seeing this, ordered his troops to halt....and to renew the attack by turns, wheeling to the near afetr they had discharged their arrows. If hard pressed, they had orders to give ground graqually as the enemy advanced with their elephants. In this manner he fought, retreating in good order till sun-set, when thinking he had sufficiently worm out the enemy and deluded them with a hope of victory, he put himself at the head of 12,000 of his best horse, whose riders were covered with steel armour, and making one desparate charge, carried death and destruction throughout the Hindoo ranks. The disorder increased every where, till at length the panic became general. The Moslems, as if they now only began to be in earnest, committed such havoc, that this prodigious army once shaken, like a great building, tottered to its fall and was lost in his own ruins........"

इस प्रकार ज्ञात होगा कि इस दूसरे आक्रमण में जयचन्द्र किसी प्रकार चित्र में नहीं आते हैं। दूसरे शब्दों में न तो पहले आक्रमण में, और न दूसरे ही में, जयचन्द्र का कोई हाथ था। पहले आक्रमण के बारे में किसी ने भी जयचन्द्र पर कोई आरोप नहीं लगाया है। वस्तुतः दोनों ही आक्रमण सुल्तान ने स्वेक्षा तथा स्वविवेक से किए थे।

३. कथित आरोप का आधार—महाराज की रखेली रानी सुहावादेवी का षड्यन्त्र ।

जयचन्द्र पर देशद्रोह का निराधार आरोप क्यों कर प्रचलित हो गया इसके कई कारणों में एक कारण महाराज की भोग-पत्नी सूहब (सुहावा) देवी का षड्यंत्र जान पड़ता है जिसका विवरण जैन ग्रन्थकार राजशेखर सूरि के प्रबन्धकोश में आया है। यह ग्रन्थ सन् १३४८ के लगभग रचा गया, अर्थात् जयचन्द्र के निधन के १५४ वर्ष बाद। ग्रन्थ में कतिपय निबन्ध हैं जिनमें एक का शीर्षक है, 'श्रीहर्ष-विद्याधर-जयन्तचन्द्र-प्रबन्ध'। उसमें सूहब देवी (सुहावादेवी) का वृतान्त नैषधीय चरितम् के रचयिता महाकवि श्रीहर्ष के सन्दर्भ में, और फिर महाराज जयचन्द्र (जिन्हें जयन्तचन्द्र कहा गया है) के सन्दर्भ में, दिया गया है। यह सूहब देवी मृत शालापति (या शलापति) की विधवा रानी थी—शालापति उत्तर-पश्चिम क्षेत्र का अमलदार था। सुहावादेवी अत्यन्त सुन्दरी तथा राजनीति निपुणा विदुषी थी। जयचन्द्र के पद्माकर नामक प्रधान मंत्री ने इस 'परम-विलासवती एवं राजनीति निपुणा' महिला को किसी प्रकार प्राप्त कर और फिर सोमनाथ की यात्रा कर जयचन्द्र की भोगपत्नी बनाया। महाराज उसके प्रेम-पाश में बँध गए जिसके फलस्वरूप राज्यशासन में उसका काफी प्रभाव हो गया और वह 'कला भारती' की उपाधि से जानी जाने लगी।

राज दरबार के श्रीहर्ष महाकवि 'नर-भारती' कहे जाते थे जिससे सूहब देवी को असह्य ईर्षा उत्पन्न हो गई थी। एक अवसर पर उस मत्सरिणी ने बड़े आदर के साथ श्रीहर्ष को बुलाकर प्रश्न किया कि आप कौन हैं ? प्रत्युत्तर में कवि ने अपने को 'कला-सर्वज्ञ' बताया। तब उसने श्रीहर्ष से कहा कि 'जूता पहनाओ', इस अभिप्राय से कि यदि वे ब्राह्मण होने के नाते कहते हैं कि मैं नहीं जानता तो वे कला-सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होते। अतः कवि ने वृक्षों के बक्कल आदि से जूता बनाकर पहना तो दिया किन्तु इस अपमान से वे बहुत खिन्न हुए। अतः महाराज से सब बातों को बता कर गंगातट पर जाकर संन्यास ले लिया।

यह हुई श्रीहर्ष और सूहब देवी की कथा। अब सूहब देवी और जयचन्द्र का प्रकरण आता है। जयचन्द्र को अभिषिक्त रानी से मेघचन्द्र नामक एक पुत्र था तथा एक पुत्र सूहब देवी से भी था जो यद्यपि मेधावी था किन्तु दुर्विनीत भी था। जब दोनों युवावस्था को प्राप्त हुए तब महाराज ने विद्याधर नामक मंत्री से पूछा कि किसे युवराज पद पर अभिषिक्त किया जाए। स्वयं उनकी इच्छा सूहब देवी के पुत्र को अभिषिक्त करने की थी किन्तु योग्य मंत्री ने कुलीन तथा सत्पुरुष मेघचन्द्र के हक में राय दी और महाराज को उस पर राजी कर लिया।

इस पर सूहव देवी क्रोधित हो गई और गुप्त रूप से अपने विश्वासपात्र दूतों को तक्षशिलाधीश्वर 'सुरत्राण' के पास इस सन्देश के साथ भेजा कि वह काशी में महाराज पर चढ़ाई करे। राजशेखर सूरि लिखते हैं कि, विद्याधर ने गुप्तचरों से ज्ञात किया कि 'प्रत्येक पड़ाव पर सवा लाख स्वर्णमुद्रा व्यय करता हुआ वह काशी पर चढ़ाई करने के लिए चल पड़ा है। तब विद्याधर ने सूहव देवी कृत इस षड्यंत्रीय विरोध का महाराज से निवेदन किया किन्तु महाराज ने अज्ञानतावश विद्याधर को यह कहकर टाल दिया कि 'वह मेरे साथ ऐसा दुर्व्यवहार नहीं करेगी।'

महाराज के इस कथन से राजभक्त विद्याधर अति चिन्तित हुआ और विचार किया कि जब विधाता ही प्रतिकूल हो गया है तब राजभ्रंश होने से पहले ही मर जाना श्रेयकर होगा। अतः उसने राजा से कहा कि 'प्रभो, यदि आज्ञा हो तो मैं गंगाजी में डूबकर प्राण त्याग कर दूँ। 'यह सोचकर कि यह मंत्री मेरे काम में कंटकभूत होता है महाराज ने मंत्री के प्रस्ताव का विरोध नहीं किया। तब मंत्री ने सोचा कि मृत्यु के सभी पूर्व रूप राजा में दृष्टिगोचर हो रहे हैं अर्थात् हित वचनों को न सुनना; दुर्नीति में प्रवृत्त होना, प्रिय लोगों में भी दोष देखना तथा गुरुजनों का अपमान करना। अतः उनकी मृत्यु अब आसन्न है, ऐसा मंत्री ने सोचा। मंत्री विद्याधर को चिन्तामणि विनायक के प्रसाद से एक पारस-पत्थर प्राप्त हुआ था जो सब धातुओं को सुवर्ण बना देता था। उसी के प्रभाव से वह प्रतिदिन ८८०० ब्राह्मणों को भोजन देता था जिस कारण वह 'लघु युधिष्ठिर' की उपाधि से लोक-प्रसिद्ध हो गया था। उस पारस को लेकर विद्याधर ने गंगा में प्रवेश किया और संकल्पपूर्वक उसे ब्राह्मण को दान में दे दिया। तब उस हतभाग्य ब्राह्मण ने मंत्री से कहा कि 'तुम्हें धिक्कार है जो मुझ ब्राह्मण को गंगातट पर बुलाकर दान में पत्थर दे रहे हो।' यह कहकर उसने उस अमूल्य पत्थर को गंगा में फेंक दिया और घर चला गया। साथ ही विद्याधर ने गंगा में डूबकर प्राण त्याग किया। उधर तक्षशिलाधीश्वर सुरत्राण (सुल्तान) ने काशी पहुँचकर नगर को नष्ट किया एवं यवनों ने लूटपाट की। अन्त में राजशेखर ने लिखा है कि राजा मारा गया या उसका क्या हुआ कुछ पता नहीं चला। इस कथा के बाद श्री हर्ष-विद्याधर-जयन्तचन्द्र-प्रबन्ध समाप्त हो जाता है।

यद्यपि उक्त निबन्ध में उल्लिखित सभी बातें ऐतिहासिक साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित नहीं है तथापि उससे निम्न बातें स्पष्ट होती हैं, यानी—

(१) यह कि ''सुरत्राण' (सुल्तान) को जयचन्द्र ने आमंत्रित नही किया बल्कि सूहव देवी ने गुप्त रूप से ऐसा किया जिसमें जयचन्द्र का कोई हाथ न था।

(२) सूहब देवी ने भी सुल्तान को महाराज पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए बुलावा नहीं भेजा बल्कि जयचन्द्र पर, क्योंकि अपने पुत्र को राजपुत्र (युवराज) न बनाए जाने पर वह राजद्रोही हो गई थी। केवल एक भोगपत्नी होने के कारण तथा दूरस्थ प्रदेश की रहने वाली होने के कारण उसे कन्नौज राज्य से कोई सहानुभूति न थी।

(३) यद्यपि राजशेखर के अनुसार सूहब देवी ने सुरत्राण के पास बुलावा भेजा किन्तु इसका अर्थ यह नहीं निकलता कि सुल्तान ने यह आक्रमण उस महिला के कहने पर किया। सुल्तान को सूहब देवी में कोई दिलचस्पी न थी और न ही उससे किसी प्रकार की सहायता की आशा ही की जा सकती थी। सुल्तान ने हमला स्वयं अपनी शक्ति के बल पर तथा अपने स्वार्थ साधन के लिए किया था न कि सूहब देवी के आग्रह पर।

मेरुतुंग कृत प्रबन्ध-चिन्तामणि में भी बताया गया है कि अपने पुत्र के युवराज पद पर प्रतिष्ठित न किए जाने के कारण सूहब देवी क्रुद्ध गई थी और बदले की भावना से उसने तुरुष्कों को कन्नौज राज्य पर आक्रमण करने के लिए बुलावा भेजा था।[1]

विद्यापति की पुरुष-परीक्षा में इसी बात को दूसरे शब्दों में यों कहा गया है कि शहाबुद्दीन के साथ युद्ध में जयचन्द्र अपनी रानी शूभादेवी (सूहवदेवी) के विश्वासघात के फलस्वरूप मारा गया।[2]

४. जयचन्द्र की निर्दोषिता से सम्बन्धित विद्वानों के मत

आम तौर पर इतिहासज्ञों ने महाराज जयचन्द्र के विरुद्ध इस आरोप को असत्य माना है कि उन्होंने मोहम्मद गोरी को यह आमंत्रण भेजा कि वह दिल्ली पति महाराज पृथ्वीराज पर आक्रमण करे। इस बात को असत्य की संज्ञा उन्होंने इस कारण दी कि उसका न तो कोई प्रमाण है और न कोई समुचित तर्क ही। और यह भी कि केवल इस तथ्य से कि जयचन्द्र और पृथ्वीराज में अनबन थी यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि जयचन्द्र ने गोरी को बुलावा भेजा।

महाराज जयचन्द्र के समर्थन में कुछ इतिहासज्ञों तथा विद्वानों के मत नीचे दिए जा रहे हैं।

---

१. जिन विजयमुनि का संस्करण, पृ० ११३-१४।

२. Nerukar's English Translation, Bombay (1914), Chap. IV, 11th Tale (Ghasmar Katha), pp. 146-153.

डा० राम कुमार दीक्षित तथा श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी का संयुक्त मत—डॉ० दीक्षित लखनऊ विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग के प्राध्यापक थे तथा श्री वाजपेयी पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा के संस्थापक थे। उक्त दोनों विद्वान "कन्नौज" नामक पुस्तिका के रचयिता हैं जो सन् १९५५ में शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश, द्वारा प्रकाशित हुई है। उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक केन्द्रों की पुस्तकमाला का यह चौथा प्रकाशन है। मोहम्मद गोरी के आक्रमण तथा जयचन्द्र के विषय में उस पुस्तक का निम्न उद्धरण दृष्टव्य है—

'सन् ११९२ ई० में मोहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज को तलावरी के युद्ध में पराजित किया। चाहमान राजा पराजित हुआ, दिल्ली पर विदेशियों का अधिकार हुआ और देश के केन्द्र में मुस्लिम राज्य की नींव पड़ी। जयचन्द्र ने पृथ्वीराज को सहायता नहीं दी और इस संकुचित नीति का फल उसे शीघ्र ही भोगना पड़ा। सन् ११९३ ई० में मोहम्मद गोरी कन्नौज की ओर अग्रसर हुआ। गाहड़वाल नरेश ने इटावा के निकट चन्दावर के मैदान में उसका सामना किया परन्तु विजयी न हो सका। यह निर्विवाद है कि जयचन्द्र ने पृथ्वीराज को सहायता नहीं दी थी। यह उसकी महानतम राजनैतिक भूल थी। परन्तु उसे देशद्रोही मानना सर्वथा अनुचित है। इस बात का पर्याप्त प्रमाण नहीं है कि उसने मोहम्मद गोरी को दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया था। जयचन्द्र वीर था और उसने वीरतापूर्वक युद्ध करके संग्राम क्षेत्र में ही अपने प्राण विसर्जित किए। भारतीय ही नहीं, मुसलमान लेखकों ने भी उसकी प्रतिभा का वर्णन किया है। कामिल-उत्तवारीख के रचयिता (इब्न नसीर) ने उसे भारत का सर्वश्रेष्ठ शासक माना है।'[१]

डॉ० आर सी० मजूमदार का मत—इनके अनुसार इस कथन में कोई सत्यता नहीं है कि महाराज जयचन्द्र ने पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए मोहम्मद गोरी को आमंत्रित किया : लेखक के शब्द हैं :—

"There is, however, nothing to support the current story that Jayachandra invited the Muslim king to invade India to wreak his vengeance against Prithviraj.[२]

अपनी एक अन्य पुस्तक में इन्हीं विद्वान इतिहासकार ने निमंत्रण की बात का खण्डन किया है। उनका कथन है कि मोहम्मद गोरी का पृथ्वीराज पर दूसरा

---

१. कन्नौज, पृ० १५, प्रथम संस्करण।

२. *Ancient India*, p, 336. Dr. Majumdar was Principal, College of Indology, Varanasi Hindu University.

हमला गोरी द्वारा गजनवियों को पूर्णतया परास्त कर पंजाब पर अधिकार कर लेने का प्रायः अनिवार्य परिणाम था। उनके शब्दों में—

"....the invasion of this country was an almost inevitable corollary to Muhammad's complete victory over the *Gaznavids* in the Punjab."[१]

डॉ० (मिस) रोमा नियोगी का मत—इनका कथन निम्न प्रकार है :—

[२]"Chand's statement that Jayachandra invited the Guri Sultan to destroy his rival Prithviraj, has been rejected by all eminent historians and Dr. R. C. Majumdar has justly pointed out that 'the invasion of this country was an almost inevitable corollary to Muhammad's complete victory over the *Gaznavids* in the Punjab'.—(An Advanced History of India)."

पावेल-प्राइस महोदय का मत—इनका कहना है कि यह बात आधारहीन है कि महाराज जयचन्द्र ने मोहम्मद गोरी को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया। ग्रन्थकार के ही शब्दों में—

"The story that Jaichand invited Mohammad Ghori to attack Prithviraj is presuming too much.[3]

नोट—पावेल-प्राइस महोदय ने उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग में सेवा की थी और अन्त में शिक्षा निदेशक के पद से अवकाश प्राप्त किया था। रिटायर होने के बाद उन्होंने भारतीय इतिहास पर अपनी पुस्तक विलायत में लिखी थी।

डॉ० राम शंकर त्रिपाठी का कथन—विद्वान इतिहासकार ने प्रश्नगत आरोप को असत्य बताया है इस आधार पर कि सामयिक मुसलमान इतिहासकार इस बात पर पूर्णतया मौन हैं कि जयचन्द्र ने ऐसा कोई निमंत्रण भेजा। वे लिखते हैं :—

"Indeed, Major Raverty, following Chand-Bardai, asserts that Jayachandra was even in secret communication with Siha-

---

१. *An Advanced History of India*, p 278.

२. Dr. Niyogi, *History of Gahadvala Dynasty*, p. 112.

३. J. C. Powell-Price (late of Indian Educational Service), *History India*, p. 114.

buddin to ensure the humiliation of Prithviraj[१]. This does not, however, appear to be true, as the contemporary Moslem historians are totally silent about any such invitation having been made by the Garharwala monarch."[२]

श्री महेन्द्रनाथ मिश्र, इतिहासज्ञ का मत—श्री महेन्द्र मिश्र (जो कि एक अच्छे इतिहासकार हैं) ने जयचन्द्र के विरुद्ध देश-द्रोहिता के आरोप को असत्य माना है। उनका कथन[3] निम्न प्रकार है :—

"The theory of Jaichand having performed Rajsuya Swayambar, and invited Muslims, is based on the book[४] written by one of the poets[५] of Prithviraj, a rival of Jaichand. Many writings of this period have been found, 'Prithviraj Vijaya', 'Hammir Mahakavya', 'Rambha Manjari', 'Prabandh Kosh', and none of them has these facts. No Muslim traveller has memtioned this either. Hence to believe on the writings of a court poet of a rival King is quite unjustified.

"History shows that Jaichand fought in the battle of Chandawar (Etawah) bravely and died as a hero on the battle-field. It was such a fierce battle[६] that his body was found after a great search among the heaps of warriors. with Jaichand passed that glorious period of Kannauj once and for all."

अर्थात्, यह धारणा कि जयचन्द्र ने राजसूय स्वयंवर (यज्ञ) किया और

---

१. Ravery, *Tabaqat-i-Nasiri* (English translation), Vol. I. p. 466, note 1, and p. 467.

२. Tripathi, History of Kanauj, p. 328.

३. Article on "Kannauj, Past and Present" by Sri Mahendra Nath Misra, published in the *National* Herald, dated 20-4-1958.

४. पृथ्वीराज रासो।

५. कवि चन्द बरदायी।

६. Battle between Mohammad Ghori and Jaichand in 1193 A. D.

मुसलमानों को (पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने के लिए) आमन्त्रित किया उस पुस्तक पर आधारित है जिसे पृथ्वीराज के एक दरबारी कवि ने लिखा था (चन्दबरदायी कृत पृथ्वीराज-रासो)। उस समय के कतिपय ग्रन्थ प्राप्य हैं किन्तु किसी में भी इन बातों का उल्लेख नहीं है। वे ग्रन्थ हैं—पृथ्वीराज-विजय, हम्मीर महाकाव्य, रम्भा-मंजरी तथा प्रबन्ध-कोष। किसी भी मुसलमान यात्री ने इसका जिक्र नहीं किया है। अतः यह अनुचित होगा कि जयचन्द्र के प्रतिद्वन्दी शासक पृथ्वीराज के दरबारी कवि पर विश्वास किया जाए। इतिहास साक्षी है कि जयचन्द्र ने चन्दावर (इटावा के पास) में मोहम्मद गोरी से शौर्यपूर्ण युद्ध किया था जिसमें उसे वीरगति प्राप्त हुई थी। वह युद्ध इतना भीषण था कि बड़ी देर की खोज के बाद महाराज का शव सहस्रों वीरों के शवों के बीच में पाया गया था। जयचन्द्र के साथ ही कन्नौज का गौरव सदा के लिए नष्ट हो गया।

डॉ० ईश्वरी प्रसाद का मत—प्रख्यात इतिहासकार डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने अपने "भारत का इतिहास" में जयचन्द्र पर प्रश्नगत दोषारोपण नहीं किया है। उन्होंने केवल इतना ही कहा है कि जयचन्द्र ने पृथ्वीराज को सहायता नहीं दी। उन्हीं के शब्दों में :—"....वह प्रतिभाशाली राजा था। उसका राज्य बनारस तक विस्तृत था। दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान के साथ उसकी घोर शत्रुता थी। जब मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज पर चढ़ाई की, तब जयचन्द्र ने चौहान राजा को कुछ सहायता नहीं पहुँचाई। तराइन (११९२ ई०) के युद्ध में पृथ्वीराज पराजित हुआ और दिल्ली के हिन्दू साम्राज्य का अन्त हो गया। एक वर्ष बाद मुहम्मद ने कन्नौज पर आक्रमण किया और जयचन्द्र को हराया। चन्दावर के युद्ध में वीरता के साथ लड़ते हुए उसकी मृत्यु हुई।"

इब्न नसीर का कथन—इब्न नसीर कृत कामिल-उत-तवारीख में भी स्पष्ट कहा गया है कि यह बात कि जयचन्द्र ने शहाबुद्दीन को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया नितान्त असत्य है—दृष्टव्य वचनेश अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ७२। शहाबुद्दीन अच्छी तरह जानता था कि जब तक उत्तर भारत के महाशक्तिशाली जयचन्द्र को परास्त न किया जाएगा तब तक उसका दिल्ली और अजमेर आदि भूभागों पर किया गया अधिकार स्थाई न होगा क्योंकि जयचन्द्र के पूर्वजों ने और स्वयं जयचन्द्र ने तुरुष्कों से अनेकों बार मोर्चा लेकर हराया था और स्वयं उसको भी। उसने सभी हमले अपनी नीति के अनुसरण में किए थे न कि किसी के कहने से।

स्मिथ महोदय के ग्रन्थ में इस आरोप का उल्लेख नहीं—अपने प्रख्यात ग्रन्थ, Early History of India, में तरायन के दूसरे युद्ध के प्रकरण में स्मिथ महोदय ने लिखा है कि पृथ्वीराज की सहायता के लिए अनेकों राजाओं की

सेनाएँ आई थीं जिनका नेतृत्व पृथ्वीराज ने किया था किन्तु १२,००० सुसज्जित तथा प्रशिक्षित मुसलमान घुड़सवारों के वेग को राजपूतों की भारी भीड़ न रोक सकी।[1] इस पराजय के लिए विद्वान ग्रन्थकार ने जयचन्द्र पर न तो कोई दोषारोपण किया है और न कोई आक्षेप ही। अतः तर्क यह है कि यदि प्रश्नगत आरोप में तनिक भी बल होता तो स्मिथ महोदय उसका कुछ न कुछ जिक्र अवश्य करते। भारत के ऐतिहासिकारों में स्मिथ महोदय का विशिष्ट स्थान है तथा इस विषय पर उनके विभिन्न ग्रन्थों की बातों को प्रमाणित माना जाता है। अतः स्मिथ महोदय के आधार पर भी यह आरोप खण्डित हो जाता है।

डॉ० राजबली पाण्डे[2] का मत—इन्होंने अपनी पुस्तक प्राचीन भारत में पहले लिखा है कि "११९३ ई० में जब शहाबुद्दीन गोरी ने चाहमानों (पृथ्वीराज चौहान) पर चढ़ाई की तो अपनी पारस्परिक शत्रुता के कारण जयचन्द्र ने देश के परम शत्रु तुर्कों का साथ दिया और सदा के लिए अपयश कमाया।" फिर पादटिप्पणी में वे लिखते हैं कि "यह विश्वास कि गोरी को जयचन्द्र ने पृथ्वीराज के विरुद्ध निमन्त्रित किया था, डॉ० त्रिपाठी के अनुसार ठीक नहीं जान पड़ता क्योंकि मुसलमान लेखकों ने कहीं भी इसका जिक्र नहीं किया है—देखिए, वही पृ० ३२८।" (डॉ० त्रिपाठी की History of Kanauj, p 328)।[3] इसके अर्थ यह होते हैं कि डॉ० पाण्डे डॉ० त्रिपाठी के कथन से सहमत हैं क्योंकि उन्होंने उसका प्रतिवाद नहीं किया है।

५. समकालीन ग्रन्थों में इस आरोप का जिक्र नहीं है

समकालीन ग्रन्थों में इस आरोप के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार फारसी (इस्लामी) समकालीन ग्रन्थों में भी इस बात का संकेत तक नहीं है कि जयचन्द्र ने मोहम्मद गोरी को आमन्त्रित किया था। बुलावे की बात इतनी गम्भीर थी कि यदि उसमें तनिक भी सत्यता होती तो उक्त ग्रन्थों में उसका सन्दर्भ अवश्य मिलता।

इस सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण बातें निम्न प्रकार हैं :—

(१) पृथ्वीराज रासो में यह बात कहीं नहीं कही गई कि जयचन्द्र ने मोहम्मद गोरी को बुलाया या बुलवाया। ग्रन्थकार ने केवल इतना ही लिखा है कि संयोगिता के अपहरण के कारण जयचन्द्र और पृथ्वीराज के बीच वैमनस्य बढ़ गया।

---

१. Early History of India, p. 403.

२. भूतपूर्व प्राचार्य तथा अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, जबलपुर विश्वविद्यालय, आदि।

३. प्राचीन भारत, पृ० ३५३-५४।

जिसके कारण तुरुष्कों द्वारा दोनों ही नष्ट किए गए।

(२) ने भी पृथ्वीराज-विजय में इस बात का न तो उल्लेख किया है और न कोई संकेत ही।

(३) कुछ मुस्लिम लेखकों ने तो इस आरोप को असत्य ही बताया है।

यहाँ यह भी कहना है कि फारसी में उल्लिखित अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं जिनमें मुसलमानों द्वारा भारत पर किए गए आक्रमणों आदि का ऐतिहासिक वर्णन है और जिनमें यह भी बताया गया है कि किस प्रकार भारत पर मुसलमानों की सत्ता स्थापित हुई। उदाहरणार्थ फिरिश्ता की तारीख-ए-फिरिश्ता जिसे उसने सन् १६०९ में अपने आश्रयदाता बीजापुर के सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय के आदेशानुसार पूरा किया। वह प्रसिद्ध ग्रन्थ आज भी भारत में मुसलमानी शासनकाल का सबसे प्रमाणिक आधार माना जाता है। यद्यपि उसमें मोहम्मद गोरी के जीवन तथा विजयों का विस्तृत वर्णन है किन्तु उसमें भी इस निमंत्रण आदि का कोई उल्लेख या इशारा नहीं है।

उक्त ग्रन्थों के सम्बन्ध में डॉ० त्रिपाठी ने स्पष्ट लिखा है कि सामयिक मुस्लिम इतिहासकार इस बात पर पूर्णतया मौन हैं कि जयचन्द्र ने गोरी को कोई आमंत्रण भेजा।[1]

कुछ लेखकों के विपरीत मत पर टिप्पणी

महाराज की निर्दोषिता के विरुद्ध कुछ लेखकों ने अपना मत अभिव्यक्त किया है। उनकी सूची यहाँ देने की आवश्यकता नहीं है—केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि उन्होंने अपने कथन के समर्थन में कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किए हैं। अतः वह उनका निजी मत ही कहा जा सकता है जिसका न कोई आधार है और न कोई तर्क ही। इतिहास में इस प्रकार के मत अथवा कथन का कोई स्थान नहीं है। अभिमत तब सार्थक माना जा सकता है जब उसका कोई आधार हो अथवा वह तर्कयुक्त हो, अन्यथा उसका कोई मूल्य नहीं होता। दूसरे शब्दों में जो वसूल न्यायिक मामलों में सत्य की खोज में लागू होते हैं वही ऐतिहासिक तथ्यों की खोज में भी।

उदाहरणार्थ, आईन अकबरी में अबुल फजल ने लिखा है कि शहाबुद्दीन ने कन्नौज के राजा जयचन्द्र से एक करार करने के बाद एक बड़ी सेना सृजित की और राय पिथौरा के राज्य पर आक्रमण किया। पृथ्वीराज ने अपनी पूर्व विजय का स्मरण करके केवल एक छोटी ही फौज एकत्रित की और सुल्तान का

१. Tripathi, History of Kanauj, p. 328.

मुकाबला करने के लिए कूच की। लड़ाई में पृथ्वीराज बन्दी हो गया और गजनी ले जाया गया। स्वामिभक्त चन्दबरदाई भी अपने स्वामी के साथ गजनी गया जहाँ पहुँच कर उसने सुल्तान से पृथ्वीराज की शब्दवेधी बाण चलाने की कला की प्रशंसा की। सुल्तान ने इसे स्वयं अपनी आँखों से देखने की इच्छा से एक आयोजन किया जिसमें पृथ्वीराज ने तीर चला कर सुल्तान का वध कर दिया।

उक्त विवरण की असत्यता के निम्न प्रमाण हैं :—

(क) महाराज पृथ्वीराज का शरीरपात युद्ध में पराजय के बाद युद्ध स्थल में ही किया गया। उन्हें गजनी ले जाने की कथा कल्पित प्रमाणित हो चुकी है। इसी प्रकार चन्दबरदाई का निम्न पद भी कवि की कल्पना है :—

चार बांस चौबीस गज अंगुल अष्ट प्रमान।
ता ऊपर सुल्तान है मत चुको चौहान॥

अबुल फजल का कथन चन्दबरदाई के पृथ्वीराज रासो पर आधारित है जिसकी अनेकों बातें असत्य सिद्ध हो चुकी हैं जिनमें उक्त बात भी शामिल है।

(ख) अबुल फजल ने अपना ग्रन्थ अकबर के राज्यकाल (१५५६-१६०५ ई०) में लिखा यानी घटना (११९२ ई०) के लगभग ४०० वर्ष बाद। सामयिक ग्रन्थ न होने के कारण उसमें इतनी पुरानी घटना के विवरण पर बल नहीं दिया जा सकता यद्यपि अकबर के राज्यकाल से सम्बन्धित उसमें उल्लिखित बातें सही मानी जाती हैं। प्रश्नगत कथन केवल सुनी-सुनाई और चन्दबरदाई के विवरण पर आधारित हैं न कि ऐतिहासिक साक्ष्यों पर।

(ग) यह प्रमाणित है कि शहाबुद्दीन गोरी की मृत्यु सन् १२०६ में हुई जबकि लाहौर के निकट कुछ घक्कारों ने बदले की भावना से उसे कत्ल कर दिया था।

कुछ लेखकों ने कहाँ तक जयचन्द्र पर दोषारोपण की किम्वदन्ती को असत्य बल दिया है वह महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्मा के निम्न कथन से परिलक्षित होगा :—

"जयचन्द्र के समय में दिल्ली, अजमेर आदि का राजा पृथ्वीराज था। इन दोनों में बनती नहीं थी। जयचन्द्र ने अपने राजसूय यज्ञ में द्वारपाल के स्थान पर पृथ्वीराज की मूर्ति रखी थी। राजसूय यज्ञ के बाद जयचन्द्र की कन्या का स्वयंवर हुआ। कन्या ने सभी राजाओं को छोड़कर पृथ्वीराज की मूर्ति को माला पहिनाई। पृथ्वीराज को पहले से ही खबर थी। वह भी कहीं आस ही पास थे। वे कन्या को लेकर रफूचक्कर हुए। अब जयचन्द्र और पृथ्वीराज में लड़ाई

ठनी। सहायता के लिए जयचन्द्र ने काबुल की ओर से सहायदीन (शहाबुद्दीन मोहम्मद गोरी) को बुलाया। सहायदीन ने आकर छल-बल से पहले पृथ्वीराज को, फिर जयचन्द्र को, दुरुस्त किया। पृथ्वीराज के मरने पर जैसी करुण दशा भारतवर्ष की हुई उसे लिखने की सामर्थ्य लेखनी में नहीं है।"[1]

इस उद्धरण में यह बात असत्य है कि जयचन्द्र ने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया (लड़ाई ठनी)। लड़ाई ठनने के माने एक का दूसरे पर आक्रमण किन्तु न तो जयचन्द्र ने पृथ्वीराज पर अथवा पृथ्वीराज ने जयचन्द्र पर हमला किया था।

दूसरी असत्यता यह है कि जयचन्द्र ने मोहम्मद गोरी को अपनी सहायता के लिए बुलाया। जब न तो जयचन्द्र ने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया और न ही पृथ्वीराज ने जयचन्द्र पर तब जयचन्द्र का अपनी सहायता के लिए किसी अन्य के बुलाए जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

तीसरी बात यह है कि जयचन्द्र के पास स्वयं इतनी अधिक और बलवान सेना मौजूद थी कि उन्हें पृथ्वीराज को परास्त करने के लिए किसी अन्य की सहायता की आवश्यकता ही न थी।

और भी यह कि जयचन्द्र की मोहम्मद गोरी से न तो मित्रता ही थी और न ही पहले से कोई राजनीतिक अथवा अन्य सम्बन्ध। इस स्थिति से भी यह स्पष्ट होता है कि बुलाने की बात नितान्त काल्पनिक और निराधार है।

× × ×

इस प्रकार यह विदित होगा कि उक्त लेखकों ने ऐतिहासिक तथ्यों और साक्ष्यों को नजरन्दाज करके केवल किम्वदन्तियों के आधार पर जयचन्द्र पर दोषारोपण किया है। अतः उनके कथन पर कोई बल नहीं दिया जा सकता।

७. कन्नौज के पूर्व शासकों ने, जयचन्द्र के पूर्वजों ने, तथा स्वयं जयचन्द्र ने, मुसलमान आक्रमणकारियों से युद्ध किये थे

मोहम्मद गोरी के भारत पर किये गए आक्रमण उन आक्रमणों का सिलसिला थे जो विदेशी जातियां भारत में सदियों पहले से करती आ रही थीं और जिनमें अधिकतर यवन लोग ही थे। इन आक्रमणों का मुकाबला भारतीय शासकों ने समय-समय पर किया था तथा इन शासकों में महाराज जयचन्द्र के पूर्वज तथा स्वयं जयचन्द्र भी थे। कन्नौज राज्य के पूर्ववर्ती अन्य राजाओं ने

---

१. श्री रामवतार शर्मा निबन्धावली के अन्तर्गत भारतवर्ष का इतिहास शीर्षक निबन्ध, पृ० २३८।

भी ऐसे ही मुकाबले किये थे। इस कथन का तात्पर्य यह है कि महाराज जयचन्द्र तथा उनके पूर्वज आदि देश की रक्षा के लिए प्रयत्नशील थे और इस दृष्टिकोण से यह बात अनर्गल हो जाती है कि उन्होंने आततायी मोहम्मद गोरी को भारत विजय के लिए निमंत्रित किया अथवा प्रोत्साहित।

उक्त आक्रमणों के विरुद्ध मुकाबले के कतिपय दृष्टान्त निम्नलिखित हैं—

महाराज यशोधर्मन द्वारा हूणों का मुकाबला—यह सन् ५२८ की बात है जिसका संदर्भ इस प्रकार है—हूण आक्रमणकारियों का पहला शासक तोरमाण था तथा दूसरा मिहिरकुल जिसकी राजधानी उत्तर में साकलनगर (आधुनिक स्यालकोट) में थी। मिहिरकुल के अत्याचारों के कारण आस पास के भारतीय राजाओं ने एक गुट बनाकर सन् ५२८ में उस पर आक्रमण किया। इस गुट के नेता थे मध्यभारत (कन्नौज भूभाग) के शासक यशोधर्मन तथा मगध के शासक बालादित्य। इतिहासज्ञ राय चौधरी लिखते हैं—

"The Hun king Mihirkul (or gul), whose head had never previously been lowered down in the humility of obeisance to any mortal, was compelled to do reverence to Yashodarman's feet.

अर्थात् हूण शासक मिहिरकुल को, जिसने कभी भी किसी मनुष्य के सामने सिर नहीं झुकाया था, अब यशोधर्मन के पाँव परें पड़ना पड़ा।

महाराज यशोधर्मन द्वारा इस प्रकार पराजित तथा अपमानित होने पर मिहिरकुल ने काश्मीर जाकर वहाँ के शासक की शरण ली।

महाराज यशोवर्मन का अरबों से युद्ध—यशोवर्मन ने कन्नौज राज्य पर सन् ७२५ में ७५२ तक राज्य किया। उसके पूर्व सन् ७१२ में अरबों ने सिन्ध पर अधिकार कर लिया था। उनके बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए यशोवर्मन को बहुत समय तक अरबों से घोर युद्ध करना पड़ा और अन्त में महाराज की विजय हुई।[1]

नागभट्ट द्वितीय—यह प्रतिहार वंश (कन्नौजीय शाखा) का संस्थापक था (सन् ८१५-८२५) तथा कान्यकुब्ज भूभाग का सार्वभौम नरेश था। उसने तुरुष्कों (मुसलमान आक्रमणकारियों) का दमन किया था। उसके पहले मालवा-गुजरात के गुर्जर प्रतिहारों ने भी अरब आक्रमणकारियों से अनेक बार देश की रक्षा की थी।

---

१. प्राचीन भारत का इतिहास (डॉ० अवध बिहारी लाल अवस्थी कृत) पृ० ८८, ९३।

मिहिरभोज द्वारा आक्रमणकारियों का मुकाबला—प्रतिहार वंशीय मिहिरभोज अपने पिता रामभद्र की मृत्यु पर सन् ८३५ में कन्नौज का शासक हुआ। उसके शासनकाल में प्रतिहारों की शक्ति उत्कर्ष को प्राप्त हुई और कन्नौज फिर उत्तरी भारत का प्रमुख राज्य बन गया। इतिहासज्ञ सरदार पनिक्कर उसके बारे में लिखते हैं—

> "मिहिरभोज हर्ष की तरह केवल महाराजाधिराज ही नहीं था; उसने कई एक राज्यों को विजय किया, सीमावर्ती नगरों की रक्षा का उचित प्रबन्ध किया और उसके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही उसके वंशज एक शताब्दी से अधिक तक मुसलमान आक्रमणकारियों का सामना करते रहे।"[१]

ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि मिहिरभोज के पिता रामभद्र को भी अरबों से युद्ध करना पड़ा और उसी में कदाचित् उनको मृत्यु हुई।

सन् १००१ तथा १००८ में महमूद गजनवी के विरुद्ध कन्नौज के शासक की लाहोर के शासक को सहायता—महमूद का पहला आक्रमण सन् १००१ में लाहौर के शासक जयपाल पर हुआ था जिसमें कन्नौज के प्रतिहार शासक राज्यपाल ने जयपाल की सहायता की थी। उसके बाद महमूद का भारत पर चौथा आक्रमण सन् १००८ में जयपाल के पुत्र आनन्दपाल पर हुआ। उस युद्ध में भी राज्यपाल ने (अन्य राजाओं की भाँति) उसकी मदद के लिए अपनी सेना भेजी थी।

गाहड़वाल शासकों के भी यवनों से युद्ध—इतिहास साक्षी है कि महाराज जयचन्द्र के सभी पूर्वजों ने यवनों से युद्ध करके देश की रक्षा की थी। गाहड़वाल वंशी कन्नौज के प्रथम स्वतंत्र शासक महाराज चन्द्रदेव थे। अपने राज्यकाल (१०८५-११००) में उन्होंने मुसलमान आक्रमणकारियों से देश को बचाया था। निम्न तालिका में गाहड़वाल वंशीय शासकों का तुरुष्कों के विरुद्ध संघर्ष का सूक्ष्म विवरण दिया जा रहा है—

शासक का नाम	विवरण
१	२
महाराज चन्द्रदेव (गाहड़वाल वंशीय) (१०८५-११०० ई०)	अपने राज्यकाल में कन्नौज के महाराज चन्द्रदेव ने देश को मुसलमान आक्रमणकारियों से बचाया[२]। यह कन्नौज के गाहड़वाल वंश के प्रथम स्वतंत्र शासक थे।

१. K. M. Panikkar, *A Survey pf Indian History*. p, 87.
२. राजपूत राजवंश (डॉ० अवध बिहारी लाल अवस्थी कृत), पृ० २८८।

१	२
मदनपाल (मदनचन्द्र) (११०४-१११३ ई०)	महाराज मदनपाल (मदनचन्द्र) महाराज चन्द्रदेव के आत्मज थे। मदनपाल को भी मुसलमानों से युद्ध करना पड़ा। इन मुसलमानों को तुरुष्क कहा गया है जो मध्य एशिया की एक लड़ाकू जाति के थे। ऐसा अनुमान है कि मदनपाल का ९ साल का राज्य-काल तुरुष्कों के साथ युद्ध करने में ही बीत गया। युवराज गोविन्दचन्द्र ने अपने पिता को तुरुष्क विजय में सहायता दी।[1]
गोविन्दचन्द्र (१११०-११५५ ई०)	अपने पिता (मदनपाल) के राज्यकाल में ही गोविन्दचन्द पर राज्य का भार आ पड़ा था। युवराज के पद पर होते हुए भी उन्होंने पिता के साथ युद्ध करते हुए तुरुष्कों और पालों को पराजित किया था। गद्दीनशीन होने के बाद भी गोविन्दचन्द्र ने तुरुष्कों का सामना किया था और शत्रुओं को पराजित कर गंगा-यमुना द्वाब में शान्ति-सुरक्षा द्वारा मध्यदेश में सुव्यवस्था कायम की और संस्कृति की रक्षा की। इन्होंने गजनी (गज्जण नगर, अफगानिस्तान में) की भी विजय की थी।[2]
विजयचन्द्र (११५५-११६९ ई०)	अपने पिता के समान ही विजयचन्द्र पराक्रमी सम्राट था। पिता की भाँति उसे भी तुरुष्कों के साथ युद्ध करना पड़ा और उसने तुरुष्क नेता हम्मीर को पराजित किया।[3]
जयचन्द्र (११७०-११९३ ई०)	महाराज जयचन्द को पराक्रमी और जितेन्द्रिय शासक कहा गया है। अपने पिता विजयचन्द्र की भाँति इन्होंने भी (सन् ११९३ में मोहम्मद गोरी से परास्त होने के पूर्व) यवनों को हराया था जिसके फलस्वरूप इन्हें "निखिल-यवन-क्षयकर्ता" (यवनों का

१. राजपूत राजवंश, पृ० २८९, २९०, २९३।

२. राजपूत राजवंश (डॉ० अवध बिहारी लाल अवस्थी कृत), पृ० २९१, २९३-२९७।

३. वही, पृ० ३०१।

१	२
	नाश करने वाला) कहा गया है।[1] विद्यापति-कृत पुरुष-परीक्षा में जयचन्द्र के लिए कहा गया है कि इन्होंने बारंबार यवन शासक को हराया ("वारंवार च यवनेश्वरः पराजयी पलायते")।

क्या स्वयं मोहम्मद गोरी भी उल्लिखित यवन आक्रमणकारियों में एक था इसका निश्चय नहीं है। अपने अन्तिम तीन आक्रमणों (सन् ११९१ तथा ११९२-९२ में पृथ्वीराज पर तथा ११९४ में स्वयं जयचन्द्र पर) के पूर्व भी गोरी के भारत के उत्तर-पश्चिमी इलाके पर एक-दो आक्रमण हुए थे किन्तु यह निश्चित नहीं है कि उनमें से किसी में जयचन्द्र ने उसका मुकाबला किया था।

निष्कर्ष—उपरलिखित तथ्यों से यह स्पष्ट है कि महाराज जयचन्द्र तथा उनके सभासद यवन आक्रमणकारियों की हिन्दुओं से स्वाभाविक शत्रुता, उनकी बर्बरता, धर्मान्धता, स्त्रियों पर अत्याचार, हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाने आदि की नीति से अनभिज्ञ न थे। ऐसी दशा में यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि जयचन्द्र ने मोहम्मद गोरी को देश की दुर्दशा तथा हिन्दुओं पर शासन करने के लिए आमंत्रित किया हो। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि महमूद गजनवी के भारत पर १७ आक्रमणों में दो आक्रमण कन्नौज पर भी हुए थे। कन्नौज पर सन् १०१८ के पहले आक्रमण में महमूद ने कन्नौज नगर को ध्वंस कर दिया था तथा उसके सहस्त्रों मंदिरों को धराशायी कर दिया था। नगर की जनता के धन को लूटा था तथा उन पर जघन्य अत्याचार किए थे। इतना ही नहीं, अपितु वह सहस्त्रों नर-नारियों को वन्दी बनाकर गजनी ले गया था जहाँ वे गुलामों के रूप में बाजार में बेचे गए थे। क्या यह सब कुकृत्य उस समय भुलाये जा सकते थे?

यह भी स्मरणीय है कि उस आक्रमण के समय कन्नौज का शासक प्रतिहार-वंशीय राज्यपाल था जिसने भयभीत होकर राजधानी छोड़ दी थी और बाद में सुलतान की अधीनता स्वीकार कर ली थी। सुलतान के लौट जाने पर आसपास के राजपूत राजाओं ने राज्यपाल को उसकी कायरता का दण्ड देने के लिए उस पर आक्रमण करके उसका वध कर दिया था। इससे जाहिर होता है कि भारतीय जनता में यवनों के प्रति प्रतिशोध की कितनी अधिक भावना थी।

उस समय देश की तथा अपने वंश की परम्परा के अनुसार महाराज

१. रम्भामंजरी नाटक जिनका निर्देश डॉ० अवध बिहारी लाल अवस्थी की पुस्तक राजपूत राजवंश के पृ० ३०५ पर दिया गया है।

जयचन्द्र यवनों के कट्टर विरोधी थे अतः उन पर प्रश्नगत आरोप सर्वथा निर्मूल है।

यह भी स्मरण रहे कि इसका कोई प्रमाण नहीं है कि जयचन्द्र और मोहम्मद की एक दूसरे से कभी भी भेंट हुई या उनमें कोई मैत्रीपूर्ण व्यवहार हुआ। इस प्रकार वे एक दूसरे के अजनवी थे। ऐसी अवस्था में जयचन्द्र का एक अजनवी को आमन्त्रित करने की बात तर्कहीन है।

८. जयचन्द्र ने पृथ्वीराज की (मोहम्मद गोरी से निपटने के लिए) सैनिक सहायता नहीं की—इसका अकाट्य समुचित कारण था

यह प्रमाणित है कि जयचन्द्र ने पृथ्वीराज की सहायता के लिए अपनी सेना नहीं भेजी। किन्तु यह इस बात को साबित नहीं करता कि जयचन्द्र ने मोहम्मद गोरी को आमंत्रित किया। दोनों बातें एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ अन्य शासक भी गोरी के दूसरे आक्रमण के अवसर पर शत्रु से लड़ने के लिए नहीं आए। उनमें से कुछ वे भी थे कि जिन्होंने गोरी के प्रथम आक्रमण पर पृथ्वीराज का साथ दिया था।

जहाँ तक जयचन्द्र की बात है उन्होंने न तो प्रथम आक्रमण पर और न दूसरे पर ही अपनी सेना के साथ पृथ्वीराज की मदद की। क्या इस नकार्मक कार्य के लिए जयचन्द्र के पास कोई माननीय कारण था, अब इस प्रश्न पर विचार कर लिया जाए।

जयचन्द्र का सेना लेकर न स्वयं जाना और न ही अपने सेनानायक के साथ सेना भेजना एक राजनीतिक सिद्धान्त पर आधारित था और जो सिद्धान्त आज भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में लागू है। वह सिद्धान्त यह है कि कोई स्वतंत्र शासक दूसरे स्वतंत्र शासक के राज्य में उसी की ही मदद के लिए अपनी सेना तब तक न भेजता था जब तक कि दूसरा शासक इसके लिए निवेदन न करे। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत में यह निवेदन रण-निमंत्रण के रूप में किया जाता था। न तो पहिले आक्रमण के अवसर पर, और न दूसरे पर, पृथ्वीराज ने जयचन्द्र को रण-निमंत्रण भेजा और इसी कारण जयचन्द्र ने अपनी फौज पृथ्वीराज की मदद के लिए नहीं भेजी।

यदि यह कहा जाए कि चूंकि देश पर संकट आने को था इसलिए निमंत्रण न मिलने पर भी जयचन्द्र को पृथ्वीराज की सहायता करना चाहिए था तो इसका भी समुचित उत्तर है। वह यह कि क्योंकि दोनों में आपसी रंजिश थी इसलिए यदि जयचन्द्र अपनी सेना अपने ही मन से भेजता तो पृथ्वीराज उसे कबूल न करता, इस आशंका से कि कहीं जयचन्द्र उसके खिलाफ कोई कार्यवाही न कर

बैठे। सामाजिक क्षेत्र में भी इसी प्रकार का एक उदाहरण दिया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति दूसरे को बारात में बिना बुलाये नहीं जाता है।

जब एक शासक दूसरे शासक के पास कोई सन्देश आदि भेजता था तो उसके साथ प्रचुर मात्रा में भेंट सामग्री भी भेजता था। जयचन्द्र के मामले में भेंट सम्बन्धी कोई प्रमाण अथवा कथन नहीं—स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक जब देशी रियासतें कायम थीं, यह पुरातन नियम था कि जब एक शासक दूसरे शासक के पास अपने कार्य सिद्धि के लिए कोई सन्देश, स्तुति आदि भेजता था तो सन्देश-वाहक के द्वारा प्रचुर मात्रा में भेंट भी भेजता था। यह भेंट पाने वाले तथा भेजने वाले की हैसियत के अनुरूप होती थी। यही नियम भारत के बाहर के अन्य स्वतंत्र देशों के साथ भी लागू थे। भेंट में हाथी, घोड़े, सुवर्ण मुद्राएं, शाल-दुशाले तथा अन्य रेशमी वस्त्र, आभूषण आदि होते थे।

इस नियम का एक उदाहरण ब्रिटिश राज्यदूत, सर टामस रो, का है जो सम्राट जहांगीर के राज्य काल में भारत आया था। वह ब्रिटिश राज्ञी महारानी इलिजिबेथ प्रथम का दूत था और भारत इस कार्य से आया था कि जहांगीर अंग्रेज सौदागरों को भारत से व्यापार करने की अनुमति दे। सम्राट की भेंट के लिए महारानी ने सर टामस रो, द्वारा एक जहाज भर सामान भेजा था जिसमें अत्यन्त सुन्दर विलायती घोड़े भी थे।

इसी प्रकार जब राजच्युत अवध के नवाब वाजिदअली शाह की माता विलायत में वाजिदअली शाह की पैरवी करने गई थीं कि उनके आत्मज को अवध की गद्दी पर पुनर्स्थापित किया जाय तब अपने साथ बहुमूल्य भेंट ले गई थी जो उन्होंने महारानी विक्टोरिया को नजर में अर्पित की थी। उसमें हीरे जवाहिरात, स्वर्ण-मुद्राएँ, आभूषण, बेशकीमती रेशमी वस्त्र, काश्मीरी शालें शामिल थीं।

दूसरा उदाहरण नाना साहेब को पेंशन न मिलने से सम्बन्धित है। सिंहासनच्युत पेशवा बाजीराव (द्वितीय) की मृत्यु हुई। दक्षिण भारत में बाजीराव विस्तृत इलाके के शासक थे। इन्होंने कम्पनी (अंग्रेजी) सरकार से युद्ध किया जिसमें वे पराजित हुए। अंग्रेजों ने इन्हें रु० आठ लाख सालाना पेंशन देकर दक्षिण भारत से निर्वासित कर दिया और वे बिठूर (ब्रह्मावर्त, जिला कानपुर) में आकर राजसी ठाठ से बस गए। उनके कोई सन्तान न थी अतः उन्होंने नाना साहेब (या नाना राव) को गोद ले लिया था। बाजीराव की मृत्यु पर नाना साहब ने बाजीराव के उत्तराधिकारी की हैसियत से उक्त पेंशन पाए जाने की स्तुति की किन्तु सामयिक गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने उसे खारिज कर दिया

जिसका एक कारण उन्होंने यह दिया कि नाना राव बाजीराव के औरस पुत्र न थे तथा उनके गोदनामे को कम्पनी सरकार द्वारा अनुमोदित नहीं किया था। इस पर नाना राव ने अपने खास हिमायती मुंशी अजीमुउल्ला खां को विलायत भेजा कि वे महारानी विक्टोरिया से उनके हक की वकालत करें। तभी नाना राव ने उनके द्वारा राज्ञी को बहुमूल्य नजर भेजी थी। नाना राव को विलायत में भी सफलता नहीं मिली। बाद में सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में उत्तर प्रदेश की बागी सेना ने उनको अपना नेता चुना। अन्त में जब अंग्रेजों ने विजय प्राप्त कर ली तब नाना राव (तथा अन्य नेता) नैपाल चले गए। अंग्रेजों के बहुत दबाव डालने पर भी नैपाल ने नाना साहब को उनके हवाले नहीं किया। बादहू नैपाल ही में उनका शरीरान्त हुआ।

आधुनिक युग में भी यही प्रथा कायम है, अर्थात् जब भारत के राष्ट्रपति अथवा प्रधान मंत्री अन्य स्वतंत्र राज्य में जाते हैं तो तरह-तरह के तोहफे ले जाते हैं यद्यपि अब हीरे जवाहिरात, स्वर्ण मुद्रा आदि ले जाने का चलन उठ गया है। इसी प्रकार दूसरे देश का शासक जब भारतवर्ष जाता है तो समुचित चीजें भेंट स्वरूप राष्ट्रपति के लिए लाता है।

९. निमंत्रण तभी सार्थक माना जा सकता था जब कि उसके साथ सैनिक सहायता की प्रतिज्ञा होती और साथ ही युद्ध संचालन के लिए प्रचुर मात्रा में अग्रिम धन भेजा जाता।

यदि निमंत्रण की बात सही मानी जाय तो सुलतान गोरी के निमंत्रण वाहक से दो प्रश्न होते जिनका उसके पास कोई समुचित उत्तर न था। प्रश्नों का आशय और उनसे सम्बन्धित स्थिति निम्न प्रकार दर्शाई जा सकती है :—

प्रश्न का आशय	स्थिति का विवेचन
१	२
१. यदि मैं आक्रमण करूँ तो क्या महाराज जयचन्द्र मेरी सैनिक सहायता करेंगे ? यदि हाँ, तो किस प्रकार ?	ऐसी सहायता करना जयचन्द्र के लिए किसी प्रकार सम्भव न था। जयचन्द्र का राज्य दिल्ली राज्य के दक्षिण में था जबकि आक्रमण उत्तर की ओर से होना था। दिल्ली क्षेत्र से होकर जयचन्द्र की सेना का गोरी की सेना की सहायता करना नितान्त असम्भव था क्योंकि पृथ्वीराज की सेना और उसके सहायक राजाओं की सेनाएँ इसमें बाधक होतीं। अतः निमंत्रण

वाहक के किसी प्रकार के उत्तर से सुलतान संतुष्ट न होता और केवल निमंत्रण के आधार पर आक्रमण के लिए अग्रसर न होता।

२. क्या महाराज ने निमंत्रण की पुष्टि में खजाना भेजा है ?

खजाना भेजने के सम्बन्ध में न तो कोई प्रमाण है और न किसी इतिहासकार का कथन ही। साथ ही यदि खजाना भेजा होता तो मार्ग में उसकी रक्षा के लिए घोड़ों, हाथियों आदि के साथ सेना की एक बड़ी टुकड़ी भी होती और साथ ही में निमंत्रण-वाहक सामन्त तथा सेनानायक और फौज के खिदमतदार, रसद सामग्री, उसके वाहन, इत्यादि भी होते। सुलतान के राज्य में पहुँचने के लिए इस काफिले को पृथ्वीराज के क्षेत्र से ही गुजरना पड़ता जिसमें काफी समय भी लगता। यह सम्भव नहीं था यह फौज और उसके साथ का जन समूह पृथ्वीराज के इलाके से छिप कर निकल जाता और उन्हें इसका ज्ञान भी न होता। ज्ञान होने पर वे उसे विध्वंस कर देते।

हाँ, तो यदि खजाना नहीं भेजा, जैसा कि उपरोक्त बातों से सिद्ध है, तो निमंत्रण भेजने का न तो कोई अर्थ था और न उस पर सुलतान आक्रमण की कोई योजना ही बनाता क्योंकि कोरे निमंत्रण पत्र के आधार पर ही आक्रमण कर देना नासमझी की बात होती जिसे बुद्धिमान सुलतान कभी न करता।

निष्कर्ष—उपरोक्त दलीलों से यह प्रमाणित होता है कि निमंत्रण सम्बन्धी आरोप कल्पना मात्र है। महाराज जयचन्द तथा उनके मंत्रीगण इतने नासमझ नहीं थे कि वे यह विश्वास करते कि कोरे निमंत्रण मात्र से सुल्तान पर तनिक भी प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकार का निमंत्रण बिल्कुल निरर्थक था और उसके भेजने से वांछित कार्यसिद्धि न होती। इसके विपरीत सुल्तान के दरबार में महाराज की हँसी होती कि भारतवर्ष के इतने बड़े और समृद्धशाली शासक ने समानान्तर शासक को भेंट रूप में न तो जवाहरात, जेवर, सोना-चाँदी, स्वर्णमुद्रा,

शाल-दुशाले तथा अन्य वस्त्र, हाथी, घोड़े आदि भेजे और न युद्ध के खर्चे के लिए खजाना।

इतना ही नहीं, भेंट न भेजना सुल्तान को अपमानित करना था जिससे वह क्रोधित हो जाता। कन्नौज का राज दरबार इस स्थिति से अनभिज्ञ न था। इसके अतिरिक्त दोनों शासकों की एक दूसरे से पहले कभी मुलाकात भी नहीं हुई थी और इस प्रकार वे अजनबी थे। इस स्थिति में निमंत्रण भेजने का प्रश्न ही नहीं उठता। निमंत्रण उसी को भेजा जाता है जिससे कुछ पहले का परिचय हो।

आज के अन्तर्राष्ट्रीय युग में भी यही स्थिति है कि कोई भी राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की सैनिक सहायता बिना उसकी संस्तुति के नहीं करता—सैनिक सहायता की विनय (प्रार्थना) या रण-निमंत्रण के कुछ आधुनिक दृष्टान्त नीचे दिए जा रहे हैं :—

(१) प्रथम विश्व संग्राम (१९१४-१८) के अवसर पर जर्मनी को फ्रांस पर आक्रमण करना था जिसके लिए उसे बेल्जियम राज्य से अपनी सेना ले जाना अनिवार्य था क्योंकि इसके अतिरिक्त अन्य विकल्प न था। कारण कि फ्रांस और जर्मनी के बीच की सरहद पर फ्रांस ने मजबूत किलाबन्दी कर रखी थी जिसे पार करना सम्भव न था। जर्मनी ने बेल्जियम से अनुमति मांगी कि वह जर्मन सेना को बेल्जियम की भूमि से गुजर जाने दे किन्तु बेल्जियम के शासक ने इसे स्वीकार न किया। फलस्वरूप जर्मनी ने बेल्जियम पर आक्रमण कर दिया जिसे रोकने के लिए बेल्जियम ने अपनी पूरी सैनिक शक्ति लगा दी। बेल्जियम की इंग्लैण्ड से मित्रता थी तथा एक सन्धि भी थी जिसके अनुसार इंग्लैण्ड बेल्जियम की सैनिक मदद करने के लिए वचनबद्ध था किन्तु उसने बेल्जियम में अपनी सेना तब तक नहीं भेजी जब तक कि बेल्जियम के राजा ने मदद की दरख्वास्त नहीं की। राजा ने यह दरख्वास्त कई दिन बाद की जब कि बेल्जियम पूर्णतया हताहत हो चुका था। तभी इंग्लैण्ड ने बेल्जियम भूमि पर अपनी सेना उतारी। यदि इंग्लैण्ड हमला होते ही अपनी सेना भेज देता तो बेल्जियम की इतनी दुर्गति न हुई होती जितनी कि वास्तव में हुई। किन्तु इंग्लैण्ड का कार्य अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त पर आश्रित था और पूर्णतया उचित। किसी भी मित्र राष्ट्र ने इंग्लैण्ड के कार्य को दोषपूर्ण नहीं ठहराया और न स्वयं बेल्जियम ने ही।

(२) बिल्कुल यही स्थिति द्वितीय विश्व संग्राम के अवसर पर हुई यानी उस समय पर भी इंग्लैण्ड ने बेल्जियम की सहायता के लिए अपनी फौज तभी भेजी जब कि बेल्जियम के राजा ने नियमानुसार और औपचारिक तौर पर मदद नहीं मांगी।

(३) दूसरे विश्व संग्राम के दौरान जर्मनी ने सहसा रूस पर आक्रमण कर दिया। तुरन्त ही ब्रिटिश प्रधान मंत्री विन्सटन चर्चिल ने घोषणा कर दी कि इंग्लैण्ड रूस के साथ है। किन्तु इतने पर भी ब्रिटेन ने अपनी सेना रूस की भूमि पर नहीं भेजी क्योंकि रूस ने अन्त तक इसके लिए आवेदन नहीं किया। जर्मनी ने रूस को प्रायः पददलित कर दिया था और जर्मन सेना स्टैलिनग्रेड तक पहुँच गई थी। उसी समय यदि भयानक जाड़े ने रूस को समारोपित न कर दिया होता तो रूस पर हिटलर का कब्जा हो जाता। इस भयावह स्थिति में भी रूस से इंग्लैण्ड की सेना को रूसी भूमि पर नहीं बुलाया। इंग्लैण्ड से उसका आग्रह यह था कि इंग्लैण्ड जर्मनी के विरुद्ध दूसरा मोर्चा खोले अर्थात् किसी अन्य स्थल से जर्मनी पर हमला करे। यह तभी सम्भव हुआ जब अमेरिका भी जापान द्वारा पर्ल बन्दरगाह पर आक्रमणित होने पर जर्मनी के विरुद्ध संग्राम में शामिल हुआ। किन्तु अमरीकी फौजें भी रूसी भूमि पर नहीं गईं क्योंकि रूस ने यह नहीं चाहा था। यह सब बातें पूर्व वर्णित अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त के अनुरूप थीं।

(४) अन्त में अपने ही देश का एक उदाहरण पेश किया जा सकता है। सन् १९४७ में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देशी रियासतें अपने को भारत सरकार से स्वतंत्र मानने लगी थीं और यह बात सम्विधानिक कानून के अन्तर्गत भी थी यद्यपि अन्त में वे भारत में विलय हो गईं। विलय के पूर्व काश्मीर रियासत पर यवन सरहदियों ने आक्रमण कर दिया और रियासत का एक बड़ा भाग अपने कब्जे में कर लिया। कश्मीरी सेना उनको रोकने में असमर्थ रही किन्तु काश्मीर नरेश ने भारत से मदद की संस्तुति नहीं की। कई दिनों बाद जब सरहदी लोग श्रीनगर के सन्निकट आ गए और पूर्ण रियासत का उनके अधिकार में चला जाना निश्चितप्राय सा हो गया तभी काश्मीर नरेश ने भारत सरकार से सहायता माँगी जो दी गई और रियासत का आक्रमणकारियों के अधिकार में चला जाना बच गया। रियासत के कुछ भाग पर उनका कब्जा बना ही रहा जो अब भी आजाद काश्मीर के नाम से जाना जाता है।

उक्त आक्रमण से भारत सरकार बहुत चिन्तित थी किन्तु काश्मीर नरेश की अनुमति के बिना उसने अपनी फौज रियासत के संरक्षण के लिए नहीं भेजी। इसमें काफी देर हुई जिसके कारण सामयिक प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू की टीका टिप्पणी भी हुई। पं० नेहरू का कहना था कि बगैर काश्मीर नरेश की अनुमति अथवा संस्तुति के रियासत की भूमि पर भारतीय सेना का भेजना अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त के विरुद्ध होता। पंडित नेहरू अन्तर्राष्ट्रीय मसलों में दक्ष थे और उनका तर्क अन्तर्राष्ट्रीय विधि विशेषज्ञों के अनुसार सही था।

१०. पृथ्वीराज द्वारा गोरी की पराजय के कुछ ही समय बाद निमन्त्रण भेजने की बात तर्क संगत नहीं

तरायन के प्रथम युद्ध में महाराज पृथ्वीराज ने मोहम्मद गोरी को सन् ११९१ में परास्त किया। किसी लेखक ने यह नहीं कहा है कि इस आक्रमण करने के लिए जयचन्द्र ने गोरी को आमन्त्रित किया; केवल इतना ही कहा गया है कि यद्यपि अनेकों अन्य राजपूत राजाओं ने पृथ्वीराज की सैनिक सहायता की किन्तु जयचन्द्र ने अपनी सेना नहीं भेजी। लगभग डेढ़ साल के अन्दर ही गोरी ने नई सेना को सुसज्जित कर पुनः आक्रमण किया और इसके सम्बन्ध में कहा गया है कि यह आक्रमण गोरी ने जयचन्द्र के निमन्त्रण पर किया। अब विचारणीय बात यह है कि इस न्यून अन्तराल में क्या यह सम्भव था कि जयचन्द्र अपने दूत-मण्डल या दूतों को सुदूर गजनी भेज कर ऐसा निमन्त्रण निवेदित करते और निमन्त्रण प्राप्त करने के बाद गया एक-दो माह ही में गोरी के लिए एक चुनी हुई और शक्तिशाली सेना का संगठन करना सम्भव था ? दूत-मण्डल को तैयार करने में तथा उसके गजनी पहुँचने में कई माह अवश्य लगते। दूसरे यह कि पराजय के तुरन्त बाद इस प्रकार का निमन्त्रण हास्यपद तथा अपमानजनक भी समझा जाता। इन सब परिस्थितियों पर विचार विनिमय करने से स्पष्ट होगा कि कथित निमन्त्रण का आरोप तर्क की कसौटी पर टिक नहीं सकता।

११. संयोगिता स्वयंवर की कथा कल्पित मात्र

भविष्य पुराण में संयोगिता (संयोगिनी) के स्वयंवर की कथा इस प्रकार आती है कि राजा जयचन्द्र के १६ रानियाँ थीं, और उनसे उसका कोई पुत्र न था। उसकी एक रानी की दासी से जयचन्द्र द्वारा संयोगिनी की उत्पत्ति हुई थी। जब वह १२ साल की हुई तब जयचन्द्र ने उसके स्वयंवर में विभिन्न राजाओं को बुलाया परन्तु पृथ्वीराज को न बुला कर उसकी स्वर्णनिर्मित मूर्ति कान्यकुब्ज की सभा में स्थापित कराई। पृथ्वीराज भी सेना लेकर वहाँ गया और संयोगिता का अपहरण कर अपनी राजधानी को लौट आया।[१] इस कथा का अनुमोदन पृथ्वीराज रासो में हुआ है। ऐसा कहा गया है कि दोनों राजाओं में जो पहले का वैर था वह इस घटना से और भी बढ़ गया। कतिपय इतिहास-कारों ने इस घटना को सत्य मान लिया किन्तु डॉ० राम शंकर त्रिपाठी इस मत से सहमत नहीं हैं। उन्होंने इसके समुचित कारण भी बताए हैं और कहा है कि यह केवल कथा मात्र है ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। उन्हीं के शब्दों में—

"It is, however, difficult to accept this romantic story as a

१. भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व, अध्याय ६।

historical fact for at this time *svayamvaras* and *rajasuya* yagnas had become obsolete, and if they hed been performed, they must have found mention in inscriptions.[१]"

यही मत डॉ० रोमा नियोगी का भी है। उनके अनुसार जयचन्द्र और पृथ्वीराज में बैरभाव होने का कोई प्रत्यक्ष कारण नही है।[२]

इस प्रकार यदि संयोगिता की कथा निरस्त हो जाती है तो फिर उसके साथ दोनों राजाओं में शत्रुता की बात भी समाप्त हो जाती है। तब फिर मोहम्मद गोरी का जयचन्द्र द्वारा बुलाए जाने का कोई कारण भी नहीं रह जाता है।

१२. कन्नौज की सेना इतनी वृहत् तथा शक्तिशाली थी कि कि जयचन्द बिना किसी की सहायता के पृथ्वीराज को पराजित कर सकते थे

महाराज गोविन्दचन्द्र के समय में कन्नौज राज्य साम्राज्य के रूप में था तथा अपनी उच्चतम सीमा को पहुँच गया था। गोविन्दचन्द्र ने मगध पर भी अधिकार कर लिया था और पटना, मुंगेर आदि नगर उसके अन्तर्गत आ गए थे। दिल्ली का इलाका भी उनके अधिकार में था किन्तु उनके पुत्र विजयचन्द्र के समय (११५५-११६९ ई०) वह क्षेत्र कन्नौज के अधिकार से निकल कर चाहमान राजा वीसलदेव के पास चला गया था।

लगभग यही स्थिति (अर्थात् दिल्ली के इलाके को छोड़कर) गोविन्दचन्द्र के पुत्र विजयचन्द्र तथा पौत्र जयचन्द्र के समय में भी थी। राज्य की सेना विशाल थी तथा देश भर में कोई भी शक्ति ऐसी नहीं थी कि जो उसका मुकाबला कर सकती।

इसके विपरीत महाराज पृथ्वीराज का अजमेर और दिल्ली का इलाका दोयम श्रेणी का था यद्यपि पृथ्वीराज स्वयं उच्चकोटि के वीर योद्धा तथा शासक थे। उनकी सेना की संख्या भी कन्नौज की सेना की तुलना में बहुत कम थी। इसी कारण मोहम्मद गोरी से सन् ११९१ में युद्ध करने के लिए उन्हें अनेकों अन्य शासकों से सहायता लेनी पड़ी थी और अपने नेतृत्व तथा शौर्य के बल पर उन्होंने शत्रु को भीषण पराजय दी थी।

उक्त तुलनात्मक बातें पृथ्वीराज की प्रतिष्ठा को न्यून करने के अभिप्राय से नहीं कही गई हैं; वस्तुतः पृथ्वीराज अपने समय में शौर्य में अद्वितीय थे तथा

१. History of Kannauj, p. 326.

२. History of the Gaharwal Dynasty, p. 107.

उनकी सेना के राजपूत सैनिक वीरता तथा रणकुशलता में किसी से कम नहीं थे। आशय केवल इतना ही है कि कन्नौज की सेना में हाथियों, घुड़सवारों तथा पैदलों की अपार संख्या को देखते हुए यही निष्कर्ष निकलता है कि यदि कन्नौज की सेना दिल्ली की सेना से युद्ध करने के लिए मैदान में आती तो संख्या को देखते हुए विजय कन्नौज की सेना को ही मिलती। अतः यह तथ्य सामने आता है कि यदि जयचन्द्र का पृथ्वीराज को हराने का लक्ष्य होता तो उन्हें किसी अन्य शक्ति के सहयोग की आवश्यकता न थी। इस स्थिति में मोहम्मद गोरी के बुलाने का प्रश्न निरस्त हो जाता है।

१३. क्या जयचन्द्र इतने विचारहीन थे कि स्वयं अपने ही सर्वनाश की योजना बनाते ?

महाराज जयचन्द्र के समय के पूर्व भारतवर्ष पर मुसलमानों के अनेकों आक्रमण हुए थे और आक्रमणकारियों ने बर्बरता के साथ हिन्दुओं का कत्लआम किया था, देश को लूट कर अगणित मूल्य की सामग्री उठा ले गए थे और मन्दिरों तथा धार्मिक स्थलों को ध्वंस किया था, कलापूर्ण देव मूर्तियों को खण्डित किया था, मन्दिरों के स्थान पर उन्हीं के मलबे से मस्जिदें बनवाई थीं, और भी तरह-तरह के अत्याचार किए थे, मसलन् महिलाओं के साथ दुराचार, हिन्दुओं को जबरन् मुसलमान बनाना। यह सब बातें प्रत्येक हिन्दू को विदित थीं। ऐसी अवस्था में क्या यह सम्भव था कि विचारशील तथा हिन्दू धर्म के घनिष्ठ उपासक महाराज जयचन्द्र मोहम्मद गोरी को पृथ्वीराज पर आक्रमण के लिए प्रोत्साहित करते। दिल्ली का राज्य उत्तर से आने वाले आक्रमणकारियों से कन्नौज राज्य को बचाने के लिए बीच का एक अरगल क्षेत्र[1] था। इसके माने यह थे कि यदि दिल्ली का राज्य मुसलमान शासकों के हाथ में चला गया तो कन्नौज राज्य की खैर न थी क्योंकि दिल्ली से कन्नौज पर आक्रमण करने में कोई बाधा न थी इसलिए कि बीच में कोई राज्य न था जिसका शासक आक्रमणकारी को अपने राज्य से होकर जाने में रोकता। अतः दिल्ली का मुसलमानों के हाथ में चले जाने का अर्थ था कि अगली बारी कन्नौज की ही थी। इस तर्क के अनुसार जयचन्द्र का मोहम्मद गोरी को दिल्ली पर आक्रमण करने का आग्रह करना इस बात का प्रयास होता कि कन्नौज भी शीघ्र ही इस्लाम सत्ता के अधीन हो जाए।

उपर्युक्त बातें एक साधारण बुद्धि के व्यक्ति में आसानी से समझ में आ जाती हैं। अतः यह मान लेना असंगता होगा कि महाराज जयचन्द्र को और

१. Buffer State.

उनके मंत्रियों को भी अपने तथा देश के सर्वनाश की परवाह न थी। शासक सदैव अपनी प्रजा का हितचिन्तक होता था और अब भी है; अतः अपने नाश के अतिरिक्त प्रजा को भी निर्दय आक्रमणकारियों को सिपुर्द कर देना कथित निमन्त्रण में निहित होता।

१४. क्या महाराज मन्त्रियों के परामर्श की उपेक्षा कर सकते थे ?

सभी शासकों की भाँति महाराज जयचन्द्र भी अपने मन्त्रियों की सलाह से, और उनके द्वारा ही, राज्य संचालन करते थे। भारतीय इतिहास की यह परम्परागत शैली है। अतएव प्रश्न यह उठते हैं—

(१) क्या महाराज के मन्त्रियों ने स्वतः यह सलाह दी थी कि मोहम्मद गोरी को भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया जाय ? (महाराज पृथ्वीराज पर आक्रमण करना भारत पर ही आक्रमण करने का प्रतीक होता है)।

(२) यदि नहीं, तो क्या मन्त्रियों ने महाराज के इस प्रस्ताव का समर्थन किया था कि सुल्तान गोरी को आक्रमण के लिए बुलाया जाय ?

(३) यदि यह भी नहीं, तो क्या महाराज ने मंत्रियों की सलाह के विरुद्ध सुलतान को आमन्त्रित किया था ?

जाहिर है कि प्रश्न (१) और (२) के उत्तर नकारात्मक हैं। मन्त्रियों को महाराज पृथ्वीराज से कोई व्यक्तिगत द्वेष न था। इसके अतिरिक्त कोई भी विचारशील व्यक्ति ऐसा कदापि न करेगा। अतः प्रश्न (३) ही विनिमय योग्य है।

शासक के समक्ष मन्त्रियों की सलाह का वजन—इस प्रश्न पर (कि क्या महाराज ने मन्त्रियों की इस सलाह की अवहेलना की कि सुल्तान को आमन्त्रित न किया जाए) विचार करने के पूर्व एक आम तथ्य पर प्रकाश डालना समुचित होगा। वह यह कि उस समय के युग में मन्त्रि परिषद् की सलाह की किस हद तक मान्यता थी। इस विषय पर प्रोफेसर अनन्त सदाशिव अलतेकर ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारतीय शासन पद्धति' (१९५९) में सप्रमाण विवेचन किया है। उस पुस्तक तथा अन्य ग्रन्थों के आधार पर निम्न बातें उल्लेखनीय हैं—

(१) मौखरि वंश के राज्यकाल में मन्त्रियों के विशिष्ट अधिकार थे। उसका एक प्रमाण यह है कि उस वंश के अन्तिम शासक गृहवर्मन का यकायक निस्सन्तान निधन हो जाने पर मन्त्रियों ने ही थानेश्वर राज्य के शासक महाराज हर्षवर्धन को कन्नौज राज्य का सिंहासन प्रदान किया था।[1]

---

१. प्राचीन भारतीय शासन पद्धति तथा T. Watters' "On Yuan Chwang's Travels in India", volume I, p. 343.

(२) कन्नौज के गाहड़वाल राजाओं के प्रायः सभी ताम्र पट्टों (दान-पत्र, आदि) में उनके 'महामात्य' प्रधान मन्त्री का उल्लेख पाया जाता है। यही बात गुजरात के चालुक्य शासकों के प्रति भी लागू है।[१] गाहड़वाल राजाओं के ताम्रपत्रों का उल्लेख सम्बन्धित स्थानों में पहले ही किया जा चुका है। शासकों पर मन्त्री के प्रभाव का यह भी उदाहरण है। गाहड़वाल ताम्रपत्रों में कोषाध्यक्ष (वित्त मन्त्री) का नाम भी बराबर मिलता है।[२]

(३) राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि काश्मीर राज्य के शासन में मन्त्रियों का स्थान उच्च महत्व का था। काश्मीर नरेश ललितादित्य (जो एक शक्तिशाली शासक था) अपने मन्त्रियों को यह स्वतन्त्रता देता था कि यदि उनको (शासक की) कोई आज्ञा अनुचित जान पड़े या ऐसे समय दी गई हो जब वे पूर्णरूपेण मानसिक स्थिति से संतुलित न हों तो मन्त्री उसका पालन न करें और ऐसा करने पर वह मन्त्रियों को धन्यवाद भी देता था।[३]

(४) दक्षिण के राष्ट्रकूट, चालुक्य और शिलाहार वंश के राजाओं के लेखों से भी विदित होता है कि शासन में मन्त्रियों का उच्चतम स्थान था। यादव वंश के एक दान-पत्र में बताया गया है कि मन्त्रियों की सहमति से ही पत्र में वर्णित दान दिया गया है।[४]

(५) दक्षिण भारत के कतिपय लेखों से ज्ञात होता है कि आमतौर पर मन्त्रियों की हैसियत सामन्त राजाओं के समान ही उच्च थी। अतएव वे महासामन्त तथा महामंडलेश्वर आदि ऊँची उपाधियों से अलंकृत किए जाते थे।[५]

(६) पंचतन्त्र से ज्ञात होता है कि शासक अपने मन्त्रियों का विशिष्ट सम्मान करते थे। मन्त्री अपने को प्रजा के हितों का संरक्षक समझते थे तथा वे राज्य के स्तम्भ माने जाते थे।[६]

(७) शासक को कुमार्ग पर जाने से रोकना यह मंत्री का सबसे बड़ा कर्तव्य था, साथ ही राजा पर नियंत्रण रखना।[७]

उपरोक्त तथ्य इस बात के प्रतीक हैं कि मंत्रियों की मन्त्रणा की अवहेलना

१. प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० ११९।
२. वही, पृ० १२७।
३. राजतरंगिणी, ४।३२०।
४, Indian Antiquary, Volume 12, p. 107.
५. प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० ११९-२०।
६. पंच-तंत्र, पृ० ६६।
७. कौटिलीय अर्थशास्त्र, भाग १, अध्याय ३।

करना किसी भी शासक के लिए अत्यन्त कठिन था। महाराज जयचन्द्र एक प्रतिष्ठित राजवंश के शासक थे और उसी वंश के पूर्व शासकों ने मुसलमान आक्रमणकारियों का सामना किया था तथा स्वयं जयचन्द्र ने भी जैसा कि पूर्व के शीर्षक में उल्लेख किया गया है।

ऐसी स्थिति में यह तनिक भी सम्भव नहीं जान पड़ता कि जयचन्द्र ने ऐसा निन्दनीय तथा घृणित कार्य किया हो अर्थात् सुलतान मोहम्मद गोरी को महाराज पृथ्वीराज पर (यानी भारतवर्ष पर) आक्रमण करने के लिए बुलावा दिया हो। किसी भी स्थिति में उनके मन्त्रियों ने ऐसी योजना का पूर्ण विरोध किया होगा यदि यह मान भी लिया जाय कि महाराज ने स्वयं ऐसा देशद्रोहक प्रस्ताव किया हो। मन्त्रियों की उपरलिखित मान्यता को ध्यान में रखते हुए यह नितान्त अमाननीय है कि महाराज उनके विरोध की अवहेलना करके अपनी ही मनमानी बात पर अटल रहे हों।

महाराज द्वारा मन्त्रियों की सलाह मानने का एक दृष्टान्त—पहले कहा जा चुका है कि महाराज सुहावादेवी के पुत्र को युवराज बनाना चाहते थे, अतः इस प्रस्ताव पर उन्होंने मन्त्रियों से विचार-विमर्श किया। मन्त्रियों ने इसका विरोध किया और कहा कि रखेली रानी द्वारा उत्पन्न पुत्र कन्नौज के पुनीत सिंहासन पर नहीं बैठ सकता विशेषतः जबकि महाराज की विवाहिता रानी से उत्पन्न औरस पुत्र (मेघचन्द्र) मौजूद था यद्यपि वह सुहावादेवी के पुत्र से आयु में कम था। महाराज ने इस सलाह को मान कर अपने प्रस्ताव को तर्क कर दिया था।

१५. यदि मोहम्मद गोरी और जयचन्द्र में मैत्री होती (जैसा कि कथित आरोप में निहित है) तो गोरी बाद में जयचन्द्र पर आक्रमण न करता

मोहम्मद गोरी के भारत पर अन्ततः तीन आक्रमण हुए। प्रथम सन् ११९१ में हुआ जिसमें वह पृथ्वीराज द्वारा पराजित हुआ और युद्धभूमि में कत्ल हो जाता यदि उसका एक स्वामिभक्त सैनिक अपनी जान खतरे में डाल कर उसको घायल अवस्था में रण के दौरान से निकाल न ले जाता। इस हार से गोरी इतना शर्मिन्दा हुआ कि उसने दूसरी बार विजयी होने की दृढ़ प्रतिज्ञा की और स्वस्थ होने के बाद दूसरे साल, सन् ११९२-९३ में पृथ्वीराज पर फिर आक्रमण किया और विजय प्राप्त करके अपने सिपहसालार कुतुबुद्दीन को विजित क्षेत्र का अपने प्रतिनिधि के रूप में राज्यपाल (गवर्नर) नियुक्त किया। फिर एक साल बाद, सन् ११९४ में, कुतुबुद्दीन तथा मोहम्मद गोरी ने मिलकर जयचन्द्र

पर आक्रमण किया जिसमें जयचन्द्र वीरगति को प्राप्त हुआ और मुल्तान का कन्नौज राज्य पर कब्जा हो गया।

मोहम्मद गोरी का जयचन्द्र पर आक्रमण करने के तथ्य से यह नतीजा निकलता है कि जयचन्द्र के प्रति गोरी की कोई सद्भावना न थी। अस्तु, यदि यह बात सत्य थी कि जयचन्द्र ने मोहम्मद गोरी को आमंत्रित किया था तो यह दोनों शासकों के बीच मैत्री अथवा सद्भावना का प्रतीक थी। इस संदर्भ में जयचन्द्र पर गोरी का आक्रमण इस सद्भावना के विपरीत ठहरता है। तो फिर न तो दोनों में मैत्री थी या सद्भावना थी और न ही पूर्व परिचय और यदि ऐसा न था तो किस हैसियत से जयचन्द्र ने गोरी को आमंत्रित किया? यह सर्वमान्य है कि एक शासक दूसरे शासक को किसी अन्य शक्ति पर आक्रमण करने के लिए तभी प्रोत्साहित करता है जब प्रथम वह दोनों शासकों में मैत्री अथवा सद्भावना अथवा पूर्व परिचय हो और प्रोत्साहित करने वाला शासक दूसरे शासक को सैनिक और अन्य सहायता करने को तैयार हो।

उक्त विनिमय से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि जयचन्द्र द्वारा गोरी को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित करने की बात अमान्य है।

१६. पृथ्वीराज के शौर्य के समर्थन ही में कुछ लेखकों ने निमंत्रण की कथा की कल्पना की

भारतीय इतिहास में महाराज पृथ्वीराज की वीरता प्रसिद्ध है। पृथ्वीराज-रासो के अनुसार—

> सोमेश्वर महावाहो, तस्यापूर्व तपो गुणम्।
> तेन पुण्य जगज्जेता गर्भान्तिरे पृथुराडयम्॥[1]

(अर्थात्, महाबली सोमेश्वर की पूर्व जन्म की तपस्या के फलस्वरूप पृथ्वीराज का जन्म अत्यन्त पुण्य समय में हुआ जो जगत विजयी था)। तरायन के प्रथम युद्ध में महाराज ने गोरी को पूर्णरूपेण पद्दलित करके अपने पराक्रम का परिचय दिया। दूसरे युद्ध में उनकी पराजय अवश्य हुई किन्तु उससे उनकी वीरता की ख्याति में विशेष अन्तर नहीं आया जैसे कि सन् १५२७ में बाबर द्वारा खानवा की लड़ाई में पराजित होने पर भी मेवाड़ के पराक्रमी राना सांगा की शौर्य कीर्ति में न्यूनता नहीं आई। इसी प्रकार यद्यपि सन् १५७६ में हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप अकबर की सेना द्वारा पराजित हुए किन्तु उनका शौर्य आज भी भारतीय इतिहास में उच्चतम स्थान पर है। इसी प्रकार योरुप में महापराक्रमी नेपोलियन भी अन्ततः अंग्रेजों द्वारा पराजित होकर बन्दी हुआ

१, रासो, आदि कथा, ५१।

तथापि संसार के महान शूरवीरों में उसकी गणना होती है। फिर भी कुछ लेखकों ने पृथ्वीराज की पराजय के लिए किसी अन्य को दोषी ठहराने की बात सोची और इसके लिए उन्हें संयोगिता की कथा के आधार पर जयचन्द्र को दोषी बताने का अवसर मिला। अतः यह कहा जाने लगा कि निजी द्वेष के कारण जयचन्द्र ने पृथ्वीराज को सैनिक सहायता नहीं दी जिससे उनको हार हुई और मुसलमानों का भारत पर अधिकार प्रारम्भ हुआ। तदनन्तर इसी बात को आगे बढ़ा कर कुछ अन्य लेखकों ने कथित निमंत्रण की बात आविष्कार की। इस प्रकार जयचन्द्र का नाम बदनाम हुआ, ऐसा समझ पड़ता है।

इस सम्बन्ध में भारत के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री मोरार जी देसाई का निम्न वाक्य स्मरणीय है जिसे उन्होंने १२ सितम्बर, १९७७ में जनता संसदीय पार्टी को सम्बोधित अपने वक्तव्य में कहा था—

"Irresponsible criticism had been the bane of this country for centuries, and it was in cirdence even today to some extent...."

भावार्थ—अनियंत्रित आक्षेप करने की भावना सदियों तक इस देश का दुर्भाग्य रहा है और यह रवैया कुछ हद तक आज भी दृष्टिगोचर हो रही है।

१७. आरोप सम्बन्धी बातों का निष्कर्ष

पूर्वोक्त विश्लेषण से यह तथ्य निकलते हैं—

(१) यह कि महाराज जयचन्द्र ने मोहम्मद गोरी को महाराज पृथ्वीराज पर सन् ११९२ में दूसरा आक्रमण करने के लिए आमंत्रित नहीं किया।

(२) यह कि मोहम्मद गोरी ने उक्त आक्रमण स्वतः विवेक से किया था न कि किसी के कहने से। सन् ११९१ के पहले आक्रमण में वह पृथ्वीराज द्वारा पूर्णतया पराजित हुआ था तथा मरते-मरते बचा था। अतः वह अपने ऊपर इस कालिख के टीके को मिटाने के लिए प्रारम्भ से ही प्रयत्नशील था और उसके लिए उसने दूसरे आक्रमण की तैयारी स्वदेश पहुँचते ही प्रारम्भ कर दी थी।

(३) यह कि कथित आरोप चन्दवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो के इस कथन पर ही आधारित है कि संयोगिता का अपहरण करने के कारण पृथ्वीराज और जयचन्द्र में वैमनस्य बढ़ गया था। चन्दवरदाई पृथ्वीराज का दरबारी कवि था और उसने अपने स्वामी के यश-वर्धन हेतु कतिपय काल्पनिक बातें लिखी हैं जिनमें संयोगिता के उपहरण की भी कथा है।

(४) यह कि कतिपय इतिहासकारों ने चन्दवरदाई के उक्त वैमनस्य के कथन को सत्य मान कर निमंत्रण की बात की कल्पना की तथा अन्य सम्बन्धित

बातों को नजरन्दाज कर दिया। फिर भी कतिपय प्रख्यात इतिहासकारों ने आरोप को अप्रमाणित माना है किन्तु उनका मत उतना प्रकाश में नहीं आया जितना कि आरोप समर्थकों का मत। इसी कारण आम जनता में जयचन्द्र के विरुद्ध कथित भावना फैल गई।

जैसा कि पूर्व के एक अध्याय में दर्शाया गया है कि किसी असत्य बात को बारम्बार दुहराने से वह सत्य प्रतीत होने लगती है और आम तौर पर लोग बिना अपने स्वविवेक को प्रयोग में लाए उस पर विश्वास कर लेते हैं। यही बात प्रश्नगत आरोप के सम्बन्ध में लागू होती है। एक बार किसी लेखक ने गलत फहमी से इसके बारे में लिख दिया तो बाद के लेखकों को उसका अनुसरण करने में हिचकिचाहट नहीं हुई। यह महाराज जयचन्द्र का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है। अस्तु।

अन्त में यह कहना है कि सम्प्रति अध्याय को पढ़ने के बाद प्रबुद्ध पाठकों के मन से यह भावना (यदि वह पहले रही हो) निकल जाएगी कि जयचन्द्र ने पृथ्वीराज पर दूसरा आक्रमण करने के लिए मोहम्मद गोरी को आमंत्रित किया अथवा उसे किसी अन्य प्रकार से प्रोत्साहन दिया। उसने दोनों आक्रमण अपनी स्वेच्छा से किये थे न कि किसी के कहने अथवा सलाह से।

o